संसार के साहित्यिक

(सचित्र)

अर्थात् प्रारंभ से लेकर आजतक के प्रसिद्ध
नोबेल-पुरस्कार-प्राप्त साहित्यिकों के
जीवन तथा कार्य का विवेचन

लेखक
प्रिंसिपल श्रीरामाज्ञाद्विवेदी 'समीर'
एम० ए० (ऑनर्ज़)

प्रकाशक
लाला रामनारायण लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद
१९३२

प्रथमावृत्ति] मूल्य १)

विषय-सूची

चित्र-सूची

समर्पण

यह ग्रंथ

उन स्वर्गीया महारागी हर हाइनेस मातेश्वरी

श्रीलक्ष्मीबाई साहिबा पँवार, डी० बी० ई०,

कैसरे-हिंद

की पुण्य स्मृति में

श्रद्धापूर्वक समर्पित है

जो

धार राज्य की प्रजा के लिए सर्वथा मातृतुल्य थीं, जो साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा थीं, जो प्राचीन विद्यास्थली धारा नगरी के परमार सम्राट् साहित्यकर्ण भोज के उपयुक्त उत्तराधिकारी परमविद्यानुरागी स्व० महाराजा हिज़ हाइनेस लेफ्टिनेण्ट-कर्नल सर उदाजीराव पँवार की सर्वगुण-संपन्न प्रतिभामयी पत्नी थीं और जिन्हें अपने पूज्य पतिदेव की पदानुगामिनी होने में ही परम पद प्राप्त था।

विनीत

'समीर'

दो शब्द

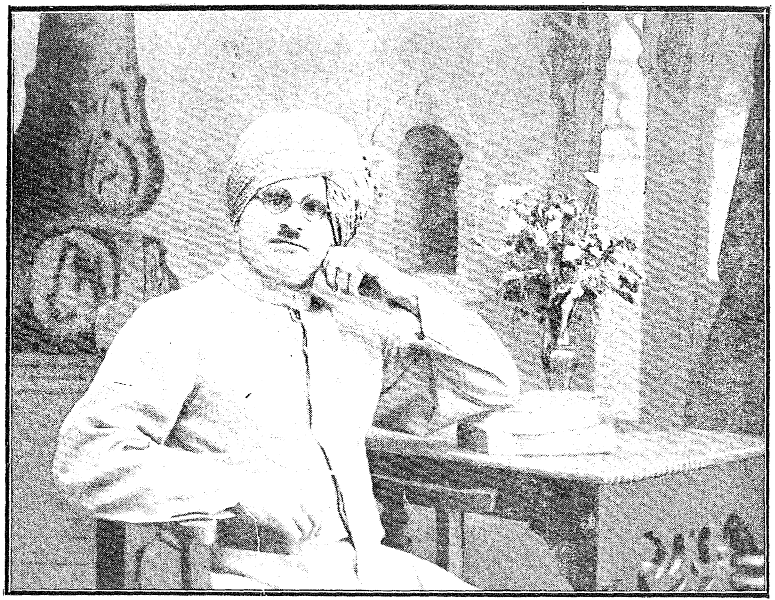
आज वसंत-पंचमी का वह पवित्र दिन है जब सरस्वती का विश्व में आविर्भाव हुआ था। सरस्वती के ही पुजारी भोजराज के एक योग्य प्रतिनिधि को यह पुस्तक मैंने समर्पित की है। शोक तो इस बात का है कि वह इस श्रद्धांजलि को स्वयं स्वीकार करने के लिए आज संसार में शरीरतः अलभ्य हैं। परन्तु उनकी स्वर्गीय आत्मा इस तुच्छ उपहार को अवश्य ही स्वीकृत करेगी इसमें हमें तनिक भी संदेह नहीं। वे योग्यतम पति की योग्यतम पत्नी थीं, पति की भाँति प्रतिभावती थीं, उन्हीं की भाँति गुणग्राहिणी तथा विद्याव्यसनी थीं—संक्षेप में भोज तथा मुंज ऐसे महीपतियों की जीवित प्रतिमा स्वरूप थीं। नोबेल-पुरस्कार प्राप्त विद्वानों का यह संक्षिप्त विवरण सर्वथा उन्हीं ऐसी आत्माओं को समर्पित होना ही चाहिये। क्योंकि इस पुरस्कार से ही आज दिन संसार को भोज और विक्रम जैसे हमारे प्राचीन नृपतियों की साहित्यिक दान-वीरता का आभास मिल सकता है।

यह पुस्तक पहले एक लंबी लेखमाला के रूप में "माधुरी" में प्रकाशित हुई थी और इसे लिखने में पुराने लेखकों के संबन्ध में श्रीमती मारबुल की प्रसिद्ध पुस्तक से बहुत सहायता मिली थी। गत दो वर्षों के पुरस्कृत साहित्यिकों का विवरण बाद को इस लेखमाला में सम्मिलित करके इसे पुस्तक रूप में कर दिया गया है। इसे इस रूप में रखते समय मुझे अपने छोटे भाई चिरं० रामानंद द्विवेदी तथा प्रिय शिष्य चिरं० रामनिवास मुकाती से बहुत सहायता मिली है।

आशा है साहित्यानुरागियों को यह ग्रंथ रुचेगा। अंत में लेख-माला को पुस्तकाकार छापने के लिए आज्ञा देने के लिए वर्त-मान "माधुरी"-सपादक मित्रवर पं० रामसेवक त्रिपाठी को धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने तथा लहेरियासराय के श्री० रामलोचन-शरण जी ने ब्लाकों से भी बहुत सहायता की है और मेरे सहकारी श्री० रंगनाथ गंगाधर वडनेरकर जी ने चित्रों की तैयारी में बड़ा कष्ट उठाया है। एतदर्थ इन सज्जनों का मैं बहुत आभारी हूँ।

—श्रीरामाज्ञाद्विवेदी 'समीर'

धार,
वसंत-पंचमी, १९८८



इस ग्रंथ के लेखक

प्रिंसिपल श्रीरामाज्ञाद्विवेदी 'समीर'

संसार के साहित्यिक

अध्याय १

नोबेल-पुरस्कार और उसके जन्मदाता

कोई समय था, जब भोज और विक्रमादित्य जैसे महाराज अपनी गुणग्राहकता की उमंग में एक-एक श्लोक के लिए एक-एक लाख स्वर्णमुद्रा कवियो को दे डालते थे। कथा प्रसिद्ध है कि महाराज भोज के दरबार में यह घोषणा कर दी गई थो कि जो पंडित नया श्लोक बना कर लाएगा, उसे एक लाख मुद्रा पारितोषिक दिया जायगा। कितने ही पंडितो ने माथापच्ची की, पर किसी को सफलता न हुई। बात यह थी कि दरबार में ऐसे पंडित थे कि सुनते-ही-सुनते उन्हे पंक्तियाँ याद हो जाती थीं, और वे नए-से-नए श्लोक को पुराना कह कर तुरन्त उसे सुना देते थे। कालिदास को यह बात मालूम हुई, तो यह एक साधारण श्लोक बना कर ले गए, जिसका अर्थ यह था कि "महाराज के पूर्वजों ने मुझ से दो लाख मुद्रा उधार लिया था, पर आज तक वह मुझे मिला नहीं; कृपा करके आज आप उसे दिला दें।" बेचारे दरबार के पंडित घबराये, क्योंकि यदि कहते हैं कि श्लोक पुराना है तो महाराज को ऋण के दो लाख देने पड़ेंगे। अतएव एक लाख बचाने के लिए उन्हें वाध्य होकर कहना पड़ा कि हाँ, श्लोक नया है; और कालिदास को तुरन्त एक लाख मिला। हँसी-ठट्ठे में भी उन दिनो ऐसी उदारतापूर्ण साहित्यिकता थी, और तभी

काव्य की उन्नति भी होती थी। महमूद गज़नी और फिरदौसी की कथा भी साहित्य-रसिकों से छिपी नहीं है, और तीन ही चार शताब्दी पूर्व कविवर बिहारीलाल जी के समय तक इस प्रकार की साहित्यिक मर्मज्ञता तथा गुणग्राहकता भारतीय नरेशों में पाई जाती थी। यों तो अब भी इङ्गलैण्ड अथवा अमेरिका के किसी धनाढ्य ने किसी प्राचीन कवि का हस्तलिखित ग्रंथ सहस्रों पौंड में खरीदा है। अभी थोड़े ही दिन हुए डिकेंस के पिक्विक पेपर्स (Pickwick Papers) की पांडुलिपि का कुछ अंश, कई हजार पौंड में किसी अमेरिकन धनकुवेर ने मोल लिया था। पर जीवित लेखकों को उनके जीवन में ही सम्मानित करने के लिए आजकल संसार का सब से बड़ा पुरस्कार नोबेल-प्राइज़ ही है, जिसका मूल्य आठ हज़ार पौंड अर्थात् एक लाख कुछ हज़ार रुपये है। प्राचीन हो जाने पर तो सभी साहित्य का आदर करते हैं, पर वर्तमान काल के बनते हुए साहित्य में से छाँट-छाँट कर गौरव के वास्तविक पात्रों को गौरव देना ही सच्ची साहित्यिक मर्मज्ञता का परिचय देना है। इस दृष्टि से नोबेल-पुरस्कार का महत्व और भी बढ़ जाता है। इस अध्याय में हम पाठकों को इसी पुरस्कार और उसके विधाता दानवीर डाक्टर एल्फ्रेड नोबेल के विषय में कुछ बतलाना चाहते हैं। अस्तु।

सब से अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस महामना पुरुष ने सच्चे ज्ञान, सच्चे साहित्य तथा सच्ची शांति की अभिवृद्धि के लिए अपनी इतनी बड़ी संपत्ति दे दी है, उसी का नहीं, उसके सारे परिवार का जीवन विज्ञान के उस विभाग में काम करते बीता था, जिसका एक मात्र उद्देश्य मानव-समाज तथा राष्ट्रों में संग्राम की प्रचंड अग्नि प्रज्वलित करना था। नोबेल के पितामह इमानुएल (Imanuel) फौज में डाक्टर थे, और

चीड़फाड़ किया करते थे। इनके पिता एमानुएल (Emanuel) स्वीडेन के प्रसिद्ध नगर स्टाकहाम में विज्ञान के अध्यापक थे। बहुत दिनों तक यह प्रयोगशाला में विषैले गैसों, स्फोटकों (Explosives) तथा अन्यान्य प्राणनाशक उपायों का अन्वेषण करते रहे। पर ऐसा जान पड़ता है कि स्वीडन के इस वंश के लोगों में दया तथा समाज-सेवा की मात्रा बहुत थी; क्योंकि अंत में नोबेल के पिता ने भी अपना समय दुःख-निवारक वैद्यकीय यंत्रों आदि के बनाने में ही बिताया। इन्हें जहाजों के कल-पुर्ज़ों के बनाने में भी बहुत रुचि थी, और इसके लिए यह कुछ दिन मिश्र देश में रहे भी। एक समय इनके पिता जी प्रयोगशाला में किसी विषैले पदार्थ का विश्लेषण कर रहे थे कि इतने में ही वह भड़क उठा और कई आदमी घायल भी हो गए। आसपास के कई घरों की खिड़कियाँ टूट गईं और बहुत हानि हुई। तभी से यह स्वदेश छोड़ कर रूस चले गए और वहीं एकांत में अपने वैज्ञानिक प्रयोगों में लगे रहे। रूस की सरकार उन दिनों युद्ध के फेर में थी, और इस लिए उन्हें इन प्रयोगों के लिए वेतन भी मिलता था, क्योंकि उनसे युद्ध के अस्त्र-शस्त्र बनाने में बड़ी सहायता मिली। जब प्रसिद्ध क्रीमियन युद्ध समाप्त हो गया, तो यह वहाँ से स्वदेश लौट आए, और इनके बड़े भाई वहीं रूस में रह गए। वहाँ वह इंजीनियर हो गए, और बाकू में प्रसिद्ध मिट्टी के तेल के सोतों की खोज करके बहुत विख्यात हुए।

इधर स्वीडन लौट कर फिर फैक्टरी का काम प्रारंभ किया, और १८६४ ई० में एक दूसरी घटना हो गई, जिसमें इनके छोटे लड़के की मृत्यु भी हो गई। तब से यह जीवन-भर बड़े दुःखी होकर रहे, और अपने प्रिय पुत्र एल्फ्रेड नोबेल को ही

उचित वैज्ञानिक शिक्षा देकर, संतोष करने की ठान कर घर बैठे रहे।

एल्फ्रेड बचपन में बहुत दुबले-पतले थे, और प्रायः बीमार रहा करते थे। इनको अपनी माता से विशेष प्रेम था; क्योंकि इनकी बीमारी में वह इन्हें कहानियाँ और देश के वीरों की कथाएँ सुनाया करती थीं। माता को न जाने क्यों विश्वास था कि आगे चल कर एल्फ्रेड बहुत बड़े आदमी हो जायँगे, और इसीलिए वह बच्चे की बड़ी देख-रेख करती, और उसे बराबर उत्साह देती रहती थीं। पढने-लिखने में यों भी इनका दिल लगता था—विशेष कर रसायनशास्त्र, भौतिक विज्ञान तथा इंजीनियरी में। सत्रह वर्ष की अवस्था तक तो यह अपने देश में ही पढते रहे, पर जब घर वालों को इनकी प्रतिभा का पता चला तो इन्हें अमेरिका भेज दिया। बात यह थी कि जहाज़ों के कल-पुरजे बनाने तथा उन्हें समझने की ओर इनकी बहुत प्रवृत्ति थी, और इनके पिता के एक मित्र जॉन एरिक्सन् इस क्षेत्र में अच्छा नाम कर रहे थे। नोबेल न्यूयार्क में एरिक्सन् के ही यहाँ रहने और इंजिनों की तैयारी की शिक्षा ग्रहण करने लगे। इन्हे वहाँ रहते थोड़े ही दिन हुए थे कि एरिक्सन् पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। इन्होंने एक नया इंजिन बनाया था, जिसमें कई वर्ष परिश्रम किया था, और बहुत धन भी व्यय हुआ था। इस आविष्कार का भविष्य अतीव उज्ज्वल था, और स्वीडन के महाराज ने इसके लिए उन्हे बधाई भी भेजी थी। १८५३ ई० में "एरिक्सन्" नामक जहाज़ पर इस इंजिन की परीक्षा ली जाने वाली थी। संयोग से आँधी का झोंका आया, और एरिक्सन् की ऊँची-ऊँची आशाओं पर पानी फिर गया। उनकी १०-१५ लाख की हानि हुई, और वह बहुत दिनों तक इसके लिए व्यग्र भी रहे। अंत में उन्होंने एक और जहाज़ का प्रबंध किया, और

निदान सफलता प्राप्त ही की, जिसका विवरण देना यहां अनावश्यक होगा *।

अपने साथी और गुरु एरिक्सन् की इस आकस्मिक विपत्ति का प्रभाव नोबेल पर अवश्य ही पड़ा। बहुत संभव है, तभी से इनके मन में वैज्ञानिकों को ऐसे अवसरों पर सहायता देने की बात आई हो। बस, तभी से यह वैज्ञानिक उद्योगों द्वारा धनोपार्जन करने की फिक्र में पड़ गए, और स्वदेश लौटते ही अपने परिवार के लोगों से एक फैक्टरी स्थापित करने के विषय में सलाह लेने लगे। इनकी इच्छा थी कि कोई ऐसा पदार्थ बनाया जाय, जो युद्ध में अधिक प्रभावशाली, पर कम हिंसात्मक हो। इधर भारतवर्ष में सिपाहियो का विद्रोह प्रारंभ हो रहा था और उधर नोबेल रूस में जाकर एक गैसोमीटर तैयार कर रहे थे। इसी बीच में कुछ प्रयोग करते समय इन्हे अकस्मात् डिनामाइट (Dynamite) जैसे पदार्थ का पता चला, जिससे आगे चल कर इनके उद्देश्य में बड़ी सहायता मिली। इस वस्तु का नाम बाद को "नोबेल का संहारक तेल" (Nobel's Blasting Oil) पड़ गया; पर इन्हें इसका व्यापार करने के लिए धन की आवश्यकता थी। कई देशों में इसका कारखाना खोलने का विचार किया, पर कहीं ठीक प्रबंध न हो सका। उन दिनों फ्रांस में तृतीय नेपोलियन गद्दी पर थे, और उन्हे इस विषय में बड़ी रुचि थी। नोबेल के लिए इन्होने सभी प्रबंध कर दिया। पर फ्रांस के सभी धनी-मानी लोग इससे बहुत घबरा उठे। बात यह थी कि नोबेल ने सब से यह कह रक्खा था कि मैंने एक ऐसा तेल तैयार किया है, जो सारे संसार को उड़ा सकता है—बस, यही सुन कर सब इन्हे

---

* देखिये The Life of John Ericsson by W C Church (New York), 1901.

संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे, यहाँ तक कि जब यह अपनी बनाई वस्तु का थोड़ा-सा नमूना लेकर अमेरिका गए, तो इन्हे होटलों में ठहरने में बड़ी कठिनाई पड़ी। अंत में कैलिफोर्निया में इनके भाई के एक मित्र डाक्टर बैंडमैन मिले, और उन्हीं के परामर्श तथा सहायता से वहाँ एक कारखाना खुल गया। फिर क्या था, थोड़े ही दिनो में योरप के सभी देशों में इनकी धूम मच गई, और स्थान-स्थान पर कारख़ाने खुलने लगे। फ्रांस में भी एक प्रयोगशाला स्थापित हुई, और नोबेल कई वर्ष तक पेरिस में रहे। मिट्टी के तेल तथा नकली गटा-पार्चा के सम्बन्ध में इन्होंने बहुत से आविष्कार किए, और वैज्ञानिकों में इनकी अच्छी चर्चा चलने लगी। पर साधारण लोग अब भी इनके नाम से डरते से थे।

पेरिस में रह कर इन्हें एक विदुषी महिला मिलीं, जिन्होंने कई वर्ष पीछे अपना और इनका एक मिश्रित जीवनचरित लिखा*, जिसके पढने से नोबेल के चरित्र तथा जीवन के महत्वपूर्ण उद्देश्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इससे पता चलता है कि नोबेल कभी-कभी कविता भी लिखते थे, और बड़ी दार्शनिक प्रवृत्ति के थे। इन महिला का नाम था बरथा वॉन सट्टर, जिन्होंने कई वर्षों पश्चात् नोबेल-प्रदत्त शांति-पुरस्कार (Peace Prize) प्राप्त किया। इन जर्मन महिला ने विश्वव्यापी शांति के पक्ष में एक बड़ा महत्वपूर्ण उपन्यास लिखा है, जिसका नाम है—Die Waffen Nieder अर्थात् "हथियार रख दो!" सन् १८९० ई० में जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई, तभी से नोबेल के हृदय में संसार में शांति स्थापित करने की समस्या धीरे-धीरे घर करती गई। कभी-कभी तो यह

* Memoirs of Bertha Von Sutter : Records of an Eventful Life. (Ginn & Co., New York), 1910.

कह उठते कि एक ऐसी मशीन बनाऊँगा, जिससे सेनाओं का नाश करके युद्धों का अस्तित्व ही मिटा दूँगा। पेरिस में रहते हुए नोबेल ने बहुत रुपया कमाया, और इसी बीच में बरथा से इनका परिचय भी हुआ। बात यह थी कि इन्होंने समाचार-पत्रों में एक सेक्रेटरी के लिए विज्ञापन निकलवाया और उसी नौकरी के लिये यह आईं। थोड़े ही दिन रहने के बाद इनका विवाह एक धनाढ्य रईस से हो गया, और इन्हें नौकरी छोड़ देनी पड़ी। पर इतने ही दिनों में इनका नोबेल से घनिष्ठ परिचय हो गया, और तत्पश्चात् भी दोनों जनों में बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा। उन्होंने लिखा है कि कभी-कभी नोबेल घबरा कर कह उठते कि शीघ्र ही एक समय आएगा, जब बड़ी-बड़ी सेनाएँ एक दूसरे को क्षण भर में ही विध्वंस कर डालेंगी। इसी प्रकार के अनेक विचार इनके हृदय में उठते रहे; इसी चिंता में वह प्रायः बीमार भी रहते। एक तो यह एकांत-प्रिय थे और बहुत कम लोगों का विश्वास करते थे; दूसरे, इनकी प्रयोगशाला में ज़हरीली गैसों का धुआँ भी भरा रहता था। इन्हीं कारणों से इन्हें बराबर सिर-दर्द रहा करता, और यह सिर बाँधे हुए बड़े ही दुःखी रह कर काम करते।

ऐसी अवस्था में काम करते-करते इनकी दशा खराब होती गई, और अंत में—दिसंबर, सन् १८९६ ई० में इनका सहसा देहांत हो गया। डाक्टरों ने कितना ही कहा, पर यह विश्राम न करते और बराबर काम करते ही रहते। फल यह हुआ कि ५६ वर्ष की ही अवस्था में यह काल-कवलित हुए। पर अपनी आकस्मिक मृत्यु की इन्हें स्वयं आशंका थी, और इसी से मरने से एक वर्ष पूर्व ही अपना वसीयतनामा लिख गये थे। अपनी नाड़ी स्वयं देखते और उसका हिसाब रखते; पर किसी पर अटल विश्वास न होने के कारण न तो वकीलों से ही विल लिखवाने में सहायता ली,

और न डाक्टरों को ही पास फटकने दिया। इसके कई वर्ष पहले ही एक पत्र में आप ने बरथा को लिखा था—

"I should like to dispose of a part of my fortune by founding a prize to be granted every five years —say six times ...."

इनके देहांत के पश्चात् जब वसीयतनामा देखा गया तो उसमें अपने भतीजों को पाँच-पाँच हज़ार पौंड दे गए थे, और शेष संपत्ति के विषय में यो व्यवस्था कर गए थे—

"With the residue of my convertible estate I hereby direct my executors to proceed as follows —

They shall convert my said residue of property into money, which they shall then invest in safe securities ; the capital thus secured shall constitute a fund, the interest accruing from which shall be annually awarded in prizes *to those persons who shall have contributed most materially to benefit mankind* during the year immediately preceding ...... "

इस प्रकार इस संपत्ति के सूद से पाँच पुरस्कार दिये जाने का प्रबंध कर दिया—एक भौतिक शास्त्र (Physics) के विद्वान् के लिए, दूसरा रसायन के लिए, तीसरा वैद्यक अथवा शरीर-विज्ञान के लिए, चौथा साहित्य और पाँचवाँ उस पुरुष के लिए—

"Who shall have most or best promoted the Fraternity of Nations and the Abolishment or Diminution of Standing Armies and the Formation and Increase of Peace Congresses."

इन पुरस्कारों के विषय में वह और भी विवरणात्मक व्यवस्था कर गए थे, जो इस प्रकार है—

"The Prizes for Physics and Chemistry shall be awarded by the Swedish Academy of Science in Stockholm; the one for Physiology or Medicine by the Caroline Medical Institute in Stockholm; the one for Literature by the Academy in Stockholm (*i e.* Svenska Akademien) and that for Peace by a Committee of five persons to be elected by the Norwegian Storthing."

इतने विवरण होते हुए भी मूल विल में, क़ानून की दृष्टि से अनेक त्रुटियाँ रह गई थीं, जिन्हें कुछ दिनों बाद फिर नियमानुसार ठीक करना पड़ा। इसके लिए स्वीडन के महाराज तथा नोबेल-वंश के एक प्रतिनिधि की भी अनुमति की आवश्यकता पड़ी। फिर इन लोगों ने भिन्न भिन्न पुरस्कारों के विषय में नियमोपनियम बनाए, जिससे विल में आए हुए सिद्धांत का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ, और नोबेल के उद्देश्यों की हर प्रकार रक्षा की गई। मूल विल के अनुसार पुरस्कार का अधिकारी वही ग्रंथ अथवा आविष्कार हो सकता है, जिसका निर्माण "during the preceding year" अर्थात् एक वर्ष पूर्व ही हुआ हो। पर कमेटी ने इसका स्पष्ट अर्थ यही किया कि इसका मंतव्य है विज्ञान तथा साहित्य में नवीन शैली एवं ज्ञान की रक्षा करना। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि पुरस्कार आवश्यकता पड़ने पर दो विद्वानों में बराबर-बराबर बाँटा जा सकता है; अथवा यदि कोई भी इसके योग्य न समझा जाय, तो उस वर्ष के लिए स्थगित भी रक्खा जा सकता है। इस प्रकार जो रुपया बचता है, वह या तो मूल फंड में जोड़

दिया जाता है, अथवा उसी विभाग की उन्नति के लिए उससे कोई विशेष फंड खोल दिया जाता है।

भिन्न-भिन्न विभागों के लिए तीन से पाँच मेम्बरों की कमेटियाँ बनाई जाती हैं, जिनमें इन विभागो के विशेषज्ञ विद्वान् रहते है। यह लोग स्वीडन, नारवे अथवा किसी भी देश के हो सकते हैं, पर होते है इनमें प्रायः सभी बहुज्ञ। रवि बाबू को जब यह पुरस्कार मिला था, तो उस समय साहित्य वाली कमेटी में एक बँगला जानने वाले योरपियन विद्वान् थे, जिन्होंने इनके सभी ग्रंथ मूल बँगला में पढ़े थे। पुरस्कार के अधिकारी विद्वानों के नाम लिख कर प्रस्ताव-रूप में ही समिति के सम्मुख रक्खे जा सकते हैं, अन्यथा नहीं; क्योंकि नियमों में स्पष्ट लिखा है—

"It is essential that every candidate for a prize under the terms of the will, be proposed as such *in writing* by some duly qualified person A direct application for a prize will not be taken into consideration"

और प्रस्ताव भी वही कर सकते हैं, जो "Must be a representative, whether Swedish or otherwise, of the domain of science, literature, etc. in question and the grounds for the award must be stated in writing"

इस श्रेणी में भिन्न-भिन्न देशों की एकेडेमियो के सदस्यों तथा विश्वविद्यालयो के अध्यापकों की भी गणना है। इस प्रकार के प्रस्ताव पुरस्कार-समिति के पास प्रति वर्ष की पहली फ़रवरी तक पहुँच जाने चाहिये; क्योंकि अनेक नियमोपनियमों का पालन करते-कराते लगभग साल-भर लग जाता है, और पुरस्कार की घोषणा कहीं जाकर दिसंबर में हो पाती है। यों तो समाचार-

पत्रों में पुरस्कृत विद्वानो के नाम एक आध महीने पहले ही प्रकाशित हो जाते हैं, पर पुरस्कार-समिति की ओर से विज्ञप्ति प्रति वर्ष १० दिसंबर को ही निकलती है; क्योंकि १० दिसंबर को ही एल्फ्रेड नोबेल का देहांत हुआ था, और यही दिन समिति का संस्थापक-दिवस (Founder's Day) माना जाता है। एक बार जब घोषणा हो गई, तो नियमानुकूल उसके विरुद्ध कोई कार्य-वाही भी नहीं हो सकती, चाहे उस सम्बन्ध में बड़े-से-बड़े संपादकों की भी सम्मति प्रतिकूल ही क्यों न हो। यह भी होता है कि निर्णायकों में मतभेद रहता है, पर उसी नियम द्वारा पुरस्कार-सम्बन्धी सभी मतभेदों अथवा वादविवादों का प्रकाशन—यहाँ तक कि समिति की बैठक की रिपोर्ट में—भी सर्वथा निषिद्ध है।

घोषणा के पश्चात् पुरस्कार भेजा जाता है, और उसके साथ ही एक सम्मान पत्र तथा स्वर्ण-पदक भी उपहार में दिया जाता है। इस पदक पर एक ओर नोबेल की प्रतिमूर्ति रहती है और दूसरी ओर पुरस्कृत लेखक के सम्बन्ध में कुछ प्रशंसात्मक पंक्तियाँ। कुछ लोगों ने तो स्वयं जाकर स्टाकहाम में ही यह सब लिया है, और उत्तर में व्याख्यान भी दिया है; पर अधिकांश लोग इतनी दूर जाने में असमर्थ रहे हैं। इटली के महाकवि कारडूकी को जब यह पुरस्कार मिला, तो वह इतने वृद्ध एवं अस्वस्थ थे कि उठ भी नहीं सकते थे, और पुरस्कार देने के लिए स्वीडन के महाराज ने अपना एक विशेष प्रतिनिधि भेजा था। दो ही महीने बाद इनका देहांत भी हो गया। हाँ, नियमों में यह स्पष्ट लिखा है कि अलबत्ता "It shall be incumbent on a prize-winner, whenever feasible, to give a lecture on the subject treated of in the work to which the prize has

been awarded, such lecture to take place within six months of the Founder's Day at which the prize was won, and to be given at Stockholm, or in the case of the peace prize, at Christiania " पर इस नियम के अनुसार हुआ बहुत कम है।

नोबेल की दी हुई जायदाद की वार्षिक आय ५-६ लाख रुपये से ऊपर है, और कहा जाता है कि महासमर के समय रूसी साम्राज्य की सारी आय का छठाँ अंश नोबेल-परिवार के आविष्कारों का फल था। कुल मिलाकर नोबेल के आविष्कारों की संख्या ९० के लगभग थी, पर सब से अधिक आय मिट्टी के तेल से होती थी, जिसका केंद्र रूस में है। जिस वर्ष जैसी आय होती है वैसा ही पुरस्कार दिया जाता है; पर इसका धन ९० हज़ार से कम और १ लाख २५ हज़ार रुपये से अधिक कभी नहीं हुआ है। इन सबकी आर्थिक व्यवस्था एक प्रबंधकारिणी समिति के अधिकार में है, जिसका नाम है Nobel Foundation, और जिसमें पाँच सदस्य हैं। इसके सभापति की नियुक्ति स्वयं स्वीडन के महाराज करते हैं। साहित्य-पुरस्कार में बहुत कुछ हाथ स्वीडिश एकेडेमी (Swedish Academy) का रहता है, जिसके सम्बन्ध में एक अच्छा पुस्तकालय भी है। पुस्तकालय के निरीक्षक की भी सम्मति इस विषय में ली जाती है, और यहाँ सभी भाषाओं के अनुवाद तथा मूल ग्रंथ भी सुरक्षित रहते हैं। यह संस्था १५० वर्ष से भी अधिक प्राचीन है, और इसकी स्थापना स्वीडन के महाराज गस्टेवस तृतीय ने १७८६ ई० में की थी। तब से इसके द्वारा काव्य, व्याख्यान आदि विषयों के लिए अनेकानेक पारितोषिक एवं पदक दिए गए हैं। इसमें कुल अट्ठारह सदस्य हैं, जो सभी स्वीडन के निवासी हैं, और वहाँ के महाराज इसके प्रधान हैं। इस समिति

का सदस्य होना उस देश में बड़ी प्रतिष्ठा का पद समझा जाता है। इसके निरीक्षक (Inspector) की नियुक्ति सम्राट् द्वारा ही होती है, यद्यपि इसके व्यवस्थापक एक चुने हुए सदस्य होते हैं।

साहित्य-पुरस्कार अभी तक केवल दो बार योरप के बाहर गया है, और वह भी सौभाग्य से एकबार भारतवर्ष के रवि बाबू और एक बार अमेरिका के लेवी सिंकलेर को मिला है, नहीं तो गत २८ वर्षों से बराबर योरप के ही एक-न-एक देश के विद्वान् को मिलता रहा है। सब से अधिक यह फ्रांस तथा जर्मनी को प्राप्त हुआ है, और केवल तीन बार स्त्रियों को दिया गया है। विज्ञान तथा संसार- शांति का पुरस्कार अलबत्ता कई बार अमेरिकन विद्वानों को प्राप्त हुआ है। शांति के लिए दो-तीन बार थियोडोर रुज़वेल्ट (Theodore Roosevelt), एलिहू रूट (Elihu Root) तथा उडरो विलसन (Woodrow Wilson) को यह मिल चुका है, और भौतिक शास्त्र में मिकैलसन को, रसायन में रिचर्ड्स एवं वैद्यक में डाक्टर कैरल को दिया गया, जो सभी अमेरिका के निवासी थे। हर्ष का विषय है कि विज्ञान में भौतिक शास्त्र (Physics) का पुरस्कार गत वर्ष भारतीय पंडित सर चंद्रशेखर वेंकट रामन को दिया गया है।

इन पुरस्कारों के नियमोपनियम कम-से-कम पाँचवें वर्ष एक बार सर्वसाधारण के सूचनार्थ प्रकाशित कर दिए जाते हैं, परन्तु इस विषय में बहुत कम लोगों को पता रहता है, यद्यपि पाश्चात्य देशो में पुरस्कार के सम्बन्ध में प्रति वर्ष चर्चा चलती ही रहती है। प्रायः इसके प्रतिकूल जो टिप्पणी की जाती है, उसका सारांश यही है कि पुरस्कार से केवल पुराने ग्रंथों का सत्कार होता है, नवीन कृतियों को प्रोत्साहन नहीं मिलता। अर्थात् यह गौरव बड़े

बूढ़े विद्वानों को ही अभी तक मिला है, जिन्हे उसके मिलने से नए ग्रंथों के लिखने का अवसर नहीं मिला है, केवल पूर्व-कृतियों का पारितोषिक मात्र प्राप्त हुआ है। बात भी सच है; क्योंकि अधिकांश विद्वानों को यह आदर ७० वर्ष से ऊपर की अवस्था में दिया गया है, और जैसा एक समालोचक ने कहा है—"They have been tombstones rather than stepping-stones." हाँ, एक-आध लोगों को भले ही ४०-५० वर्ष तक ही प्राप्त हो गया है, और उन लोगों ने उसके पीछे भी बहुत कुछ साहित्य-सेवा की है।

जो कुछ हो, इस समय तक यह पुरस्कार बेजोड़ है और इससे विश्व-साहित्य का जितना उपकार हुआ है, उतना अन्य किसी पबलिक पुरस्कार से नहीं। सब से बड़ी बात तो यह है कि पुरस्कार-प्राप्त विद्वान् थोड़े दिनों के लिए संसार-भर के अध्ययन एवं अनुशीलन का केंद्र हो जाता है, और इस प्रकार अंतर-राष्ट्रीय विचार-विनिमय का एक अपूर्व अवसर मिलता है। यों तो आदर्शवादिता ही इसका लक्ष्य है, पर एक-आध बार तो इसने प्रांतीय साहित्य की भी रक्षा को पुरस्कृत किया है। परमात्मा करे, नोबेल-सरीखे साहित्य-हितैषी और भी उत्पन्न हों, और बीसवीं शताब्दी में जहाँ व्यापार तथा विज्ञान की तूती बोल रही है, सरस्वती देवी के उपासकों का भी इसी प्रकार आदर होता रहे। तथास्तु

अध्याय २

योरप के कुछ प्रसिद्ध लेखक तथा कवि

एल्फ्रेड नोबेल ने संसार का जो उपकार किया है, वह शायद ही किसी और माई के लाल ने किया हो। नोबेल महाशय उन महान् आत्माओं में से थे, जो क्षण-भर के लिये सांसारिक प्रलोभनों में पड़कर फिर सनातन तत्त्व को प्राप्त कर लेते और उसी के पीछे जीवन और अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं। उन्हें मरे अभी ३० वर्ष भी नहीं हुए; पर साहित्यिक संसार में जितना नाम उनका हो गया है, उतना शायद बड़े-बड़े कवियों का भी नहीं है। इसका कारण केवल यही है कि साहित्य के ही लिये नहीं, ज्ञान की वृद्धि के लिये उन्होंने अपना जीवन बिताया, और फिर मरने के पश्चात् भी अपनी संपत्ति उसी की सेवा में लगा दी।

नोबेल का पूरा नाम एल्फ्रेड बरनर्ड नोबेल (Alfred Bernhard Nobel) था, और इनका जन्म सन् १८३३ में, स्टाकहाम नगर में हुआ था। अपने पिता की भाँति इन्हें भी प्रारंभ से ही विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं—विशेषतः रसायन, गृह-निर्माण आदि—में विशेष रुचि थी। वह अपने भाइयों में सब से दुबले-पतले थे, पर थे सब से अधिक भावुक। यह बात उनकी माता को भली भाँति ज्ञात थी। उनके पिता का नाम एमेनुएल (Emanuel) और माता का कैरोलिन हेनरिट (Karoline Henriette) नोबेल था। कैरोलिन बड़ी सज्जन और भलेमानस महिला थीं, और न जाने उन्हें कैसे विश्वास हो गया था कि हो न हो, मेरा लड़का बड़ा आदमी होगा। यह बात बिलकुल

ठीक उतरी; क्योंकि शीघ्र ही एल्फ़्रेड अमेरिका भेजे गए, और वहाँ जाकर वह जहाज़ों की रचना का वैज्ञानिक अध्ययन करने लगे। उनके एक साथी एरिक्सन वहाँ बहुत कुछ वैज्ञानिक खोज कर रहे थे, जिसको देख कर एल्फ्रेड की शक्तियाँ और विकसित हो चलीं। पर उनकी प्रतिभा में काव्य की झलक थी, और उन्हें विज्ञान की भयानक शक्तियों पर क्रोध आया करता था। इस प्रकार बहुत पहले से ही, रुपया-पैसा पैदा कर लेने पर भी, इनको यह संदेह था कि सचमुच विज्ञान मानव-समाज का वास्तविक कल्याण कर सकता है, या नहीं,। उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार से वैज्ञानिक यंत्र और रासायनिक पदार्थ बनाए थे, जिनसे जीवन को लाभ के अतिरिक्त हानि ही अधिक हो सकती थी। इससे उन्हें और भी क्षोभ होता था। सन् १८९६ ई० में, ६३ वर्ष की अवस्था में, अकस्मात् उनका देहांत हो गया। परन्तु इसके बहुत पूर्व वह अपने मित्रों से कह चुके थे, और अपनी डायरी में भी लिख चुके थे कि "मेरी इच्छा है कि संसार के दुःख को कम करने और सुख की वृद्धि के लिये कुछ सेवा कर जाऊँ।" इसी इच्छा का फल यह हुआ कि मरने के बहुत पूर्व वह अपने वसीयतनामे में यह लिख गए कि मेरे धन के व्याज से विज्ञान तथा साहित्य की सच्ची सेवा की जाय। इस प्रकार उस व्याज के पाँच विभाग करके, उसका एक अंश "साहित्यिक आदर्शों को गौरवान्वित करने में" लगाने के लिये उन्होंने आदेश किया। यह रुपया आठ हज़ार पौंड अर्थात् १ लाख रुपये से कुछ अधिक होता है, और यही नोबेल-पुरस्कार का आर्थिक स्तंभ है।

पुरस्कार के लिये एक अलग साहित्यिक समिति है, जो प्रतिवर्ष उसके विषय में घोषणा करती है। यह संस्था अब कोई तीस वर्ष की हो गई है। इसके द्वारा भिन्न-भिन्न देशों के दिग्गज लेखकों

को बराबर सम्मान प्राप्त होता रहा है। सन् १९१४ और १९१८ ई० में साहित्यिक पुरस्कार किसी कारण से नहीं दिया जा सका; १९०४ और १९१७ में यह पुरस्कार दो-दो लेखकों में आधा-आधा बाँट दिया गया था। पुरस्कार का प्रारंभ सन् १९०१ ई० से हुआ है, और वह अब तक दो दर्जन से अधिक विद्वानो को मिल चुका है। सब मिलाकर लगभग १६ देशों के साहित्यसेवी स्त्री-पुरुष इससे सम्मानित हो चुके हैं, किंतु नोबेल-पुरस्कार का अधिक सम्मान जर्मनी और फ्रांस को मिला है। इटली, नार्वे, स्वीडन, पोलैंड और स्पेन के दो-दो विद्वानों को पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अमेरिका, स्वीज़रलैंड, डेन्मार्क और भारतवर्ष को एक-एक बार यह गौरव प्राप्त हुआ है। यद्यपि एल्फ्रेड महाशय स्वयं स्वीडन के रहने वाले थे, तथापि स्वीडन के विद्वानों को यह पुरस्कार दो ही बार मिल सका। कितने ही देश तो ऐसे हैं, जहाँ के विद्वानों को यह सम्मान अभी तक नहीं प्राप्त हुआ। उदाहरण के लिये इतने बड़े देश रूस को अभी तक यह गौरव नहीं मिला यद्यपि बेल्जियम, इँगलैंड तथा आयर्लैंड-जैसे छोटे-छोटे देशों के कवियों तथा लेखकों का सम्मान किया गया है।

सली प्रुडोम

सब से पहले, सन् १९०१ में, साहित्य का पुरस्कार फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् तथा कवि सली प्रुडोम (Sully Prudhomme) को मिला। इनका जन्म सन् १८३९ ई० में हुआ था, और पुरस्कार पाने के छः वर्ष पश्चात् ही इनकी मृत्यु हो गई। पुरस्कार मिलने पर अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में उनकी ख्याति का ढिंढोरा पिट गया, और तभी से लोग उनकी कविता का अनुशीलन करने लगे। फ्रांस के ही दूसरे प्रतिभाशाली विद्वान् अनातोले इनके

पुराने मित्रों में थे। अनातोले को वही पुरस्कार २० वर्ष पश्चात्, सन् १६२१ में, मिला। फ्रांस और प्रशिया में जो घोर संग्राम हुआ था, उसका प्रुडोम के ऊपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा, और तब से उनकी काव्य-शैली में बड़ा परिवर्तन हो गया। एक समालोचक ने लिखा है कि इनकी कविता में अंकगणित और रेखागणित की छाप है, और ये कवियों में वैज्ञानिक हैं; पर साथ-ही-साथ इनके काव्य में प्रेम तथा निराशा का बड़ा अच्छा विवेचन मिलता है। इनके ग्रंथों का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। यहाँ उनकी एक-आध कविता का नमूना दिया जाता है। देखिए, प्रेम का प्रार्थी कैसे विनीत भाव से याचना कर रहा है—

Oh ! did you know how the tears apace
Fall by a lonely heart, alas !

* * *

And did you know of the hopes that arise
In wearied soul from a pure young glance,
May be to my window you'd lift your eyes
As if by chance...................

* * *

But if you knew of the love that enwraps
My soul for you, and holds it fast,
Quite simple over my threshold, perhaps
You'd step at last.

उनके काव्यात्मक गणित का भी उदाहरण सुनिए। अपनी एक लंबी कविता में वह ज्योतिष और उसकी निश्चित प्रगति की व्याख्या करते हैं। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि राबर्ट ब्राउनिंग के टक्कर की ये पंक्तियाँ हैं—

'Tis late ; the astronomer in his lonely height,
Exploring all the dark, descries afar
Orbs that like distant isles of splendour are,
And mornings whitening in the infinite.
Like winnowed grain the worlds go by in flight
Or swarm in glistening spaces nebular;
He summons one disheveled wandering star—
Return ten centuries hence on such a night
The star will come, it dare not by one hour
Cheat science, or falsify her calculation ;
Men will have passed, but watchful in the tower
Man shall remain in sleepless contemplation.

इन पंक्तियों के पढ़ने से ब्राउनिंग की प्रसिद्ध कविता "Grammarian's Funeral" का स्मरण हो आता है ; क्योंकि उसमें भी वही ऊँचा आदर्शवाद है, जो नोबेल-पुरस्कार के लिये इतना आवश्यक समझा जाता है।

थियोडोर मॉमसन

सन् १६०२ ई० का पुरस्कार प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् थियोडोर मॉमसन (Theodore Mommsen) को दिया गया।

जर्मनी के बड़े-बड़े पुस्तकालयों में मॉमसन की पुस्तकों की सैकड़ों प्रतियाँ रक्खी जाती हैं। उनकी रचनाओं की संख्या सौ से ऊपर पहुँच चुकी है। वह इतिहास, विज्ञान, साहित्य, क़ानून इत्यादि कई विषयों के पंडित थे। पुरस्कार मिलने के साल-भर के भीतर ही उनका देहांत हो गया। उस समय उनकी अवस्था

८६ वर्ष की थी। शायद नोबेल-पुरस्कार प्राप्त करनेवालों में सब से वृद्ध यही हैं। इनका सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण ग्रंथ "रोम का इतिहास"* है। विशेषतः इसी के लिये इन्हें पुरस्कार भी दिया गया था।

यों तो इतिहासज्ञ बहुत से हैं, पर मॉमसन ने अपनी पुस्तकों में किसी देश-विशेष के इतिहास के अतिरिक्त वहाँ के तथा संसार के सिद्धांतों की गूढ़ विवेचना की है, जैसा कि वह स्वयं अपनी बड़ी पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं "रोम का इतिहास लिखने में मैंने इटली का इतिहास लिख डाला है"†। वह सचमुच 'इतिहास के एकत्व' (Unity of History) में विश्वास रखते हैं। पहले यह ज़्यूरिच में कानून के प्रोफ़ेसर रहे ; फिर ब्रेसलौ में, और तदनंतर बर्लिन-विश्वविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता। वहाँ रहकर आपने बहुत कुछ काम किया, और आपकी पुस्तको के कितने ही अनुवाद भी प्रकाशित हुए।

कुछ लोग कह सकते हैं कि साहित्य का पुरस्कार ऐतिहासिक विद्वान् को क्यों दिया गया? पर नोबेल महाशय की साहित्य की परिभाषा इतनी संकुचित नहीं थी। उन्होंने पुरस्कार की शर्तों में साफ़ लिख दिया है कि वही विद्वान् पुरस्कार का अधिकारी होगा, जिसमें आदर्शवादिता रहे और जिसके लेखों तथा ग्रंथों ने संसार का उपकार किया हो। कारण, उनका ध्येय था—सभी देशों में उत्तरदायित्वपूर्ण जागृति फैलाना, चाहे वह जागृति काव्य की हो, अथवा इतिहास की या विज्ञान की। अतएव मॉमसन साहित्य की

---

* Romische Geschichte.

† "To relate the History of Italy, not simply the record of the city of Rome"

इस विस्तृत दृष्टि से सर्वथा पुरस्कार के पात्र थे। उन्हें अधिक विद्वत्ता के कारण "Modern Erasmus" की उपाधि मिली थी, जो कुछ कम बात नहीं।

जार्नस्टर्न जार्नसन

सन् १६०३ का पुरस्कार नार्वे के ख्यातनामा लेखक एवं कला-विशारद् जार्नस्टर्न जार्नसन (Bjornsterne Bjornson) को उनकी आध्यात्मिक काव्य-कलामय लेखनी के लिये दिया गया। कुछ दिन पूर्व यह उस समिति के पाँच सदस्यों में से भी थे, जो नोबेल-पुरस्कार का निर्णय करती थी। यह इतने प्रसिद्ध हो गए थे कि देश-भर में इन्हे "Norway's Father" (नार्वे के पिता) की पदवी मिल गई थी। पुरस्कार मिलने के समय इनकी अवस्था ७१ वर्ष की थी, और ७ वर्ष के पश्चात् ही इनकी मृत्यु हो गई।

इनका बाल्यकालीन जीवन पहाड़ की घाटी के एक गाँव में बीता था। जब कुछ बड़े हुए, तो दूसरे ही प्रकार के वातावरण में भेज दिये गए। इस परिवर्तन का उन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। १७ वर्ष की अवस्था में यह क्रिश्चिआनिया विश्वविद्यालय में पढ़ने गए। वहाँ नार्वे के प्रसिद्ध नाट्यकार एवं कवि इब्सन इनके सहपाठी रहे, और दोनों में बड़ी मित्रता हो गई। इसके कुछ दिन बाद दोनों धुरंधर लेखक समधी हो गए; क्योंकि जार्नसन की पुत्री का विवाह इब्सन के पुत्र के साथ हो गया। और, फिर तो दोनों जीवन भर के संगी बन गये। इब्सन के सम्बन्ध में आपने एक स्मृतिपूर्ण कविता लिखी है। देखिये, कितना विनोद तथा सत्य है—

Overstrained and lean, of the colour of gypsum,
Behind a beard, huge and black was seen Ibsen.

विश्वविद्यालय में रहकर इन्हें डेनिश साहित्य में बड़ी रुचि हो गई। वहीं इन्होंने कई छोटे-मोटे नाटक भी लिखे। उनमें से सब से उत्तम था एक प्रेम-काव्य, जिसका नाम है "The Newly Married Couple" अर्थात् "नवविवाहित दंपती"। इनके ग्रंथ अनुवादित हो चुके हैं, और कुल मिलाकर कई दर्जन पुस्तकें इनकी लिखी हैं। उपन्यासों का एक संग्रह १३ मोटी २ जिल्दों में प्रकाशित है, और नाटकों की सूची भी लंबी है। इनके अतिरिक्त फुटकल कविताएँ तथा खंड-काव्य भी हैं। उनके ग्रंथों में एक आध तो बड़े ही मनोरंजक हैं। उदाहरण के लिये एक का नाम है "संपादक" (The Editor)। इस नाटक में संपादकों के ऊपर कुछ कटाक्ष अवश्य हैं; पर साथ-ही-साथ उन साधारण स्थितियों का भी वर्णन है, जो संपादकों की प्रतिभा के लिये सहायक तथा हानि-कारक, दोनों होती है। जानसन ने कुछ दिनों के लिये नाट्यशास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त किया, और अमेरिका आदि देशों में भ्रमण भी खूब किया। यह अपने देश के बड़े भक्त थे, पर अंध-भक्तों में नहीं थे। अपने देश के प्रेम की विवेचना इन्होंने एक-आध गीतों में की है। ये गीत बहुत ही लोकप्रिय हैं, और दार्शनिक तत्व की झलक भी दिखलाते हैं। एक छोटा-सा गीत सुनिए—

"Yes, we love this land that towers
Where the ocean foams;
Rugged, storm-swept, it embowers
Many thousand homes."

यह तो अपनी मातृभूमि का प्रेम हुआ; पर उसका आदर्श-

पूर्ण तत्त्व क्या है, यह भी इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है। उनका आदर्श देश स्वर्गीय है, और वह उसे भविष्य समझ कर संबोधित करते हैं—

Land that shall be !
Thither, when thwarted our longing, we sail—
Sighs to the clouds, that we breathe when we fail
Form a mirage* of rich valley and mead
Over our need—
* * *
The land that shall be

उनके लिखे एक-आध और नाटक बड़े ही उच्च कोटि के हैं, और उनमें कितने ही सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्न हल किए गये है। उनमें से एक है "The King" (राजा) और दूसरा "The Bankrupt" (दिवालिया)। इनके सभी नाटक कभी-न-कभी मंच पर अभिनय का सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं। सच्ची बात तो यह है कि जार्नसन का जीवन ही नाट्यमय है। उनमें विनोद तथा आनन्द का अंश बहुत प्रबल था। वह कहा करते थे कि मुझे नया पाजामा पहनकर बड़ा आनन्द आता है। वह सच-मुच बच्चों की भाँति उत्सुक एवं जिज्ञासु थे, और सदैव बाल्यकाल के सुख को अनुभव करने का प्रयत्न किया करते थे†।

---

* मृग-तृष्णा

† विशेष विवरण के लिये ये पुस्तकें देखिये—Northern Studies by Sir Edmund Gosse और Creative Spirits of the Nineteenth Century by G. Brandes.

फ्रेडरिक मिस्त्रल

सन् १९०४ का पुरस्कार जिन दो विद्वानों में आधा-आधा बाँटा गया, उनमें एक तो फ्रांस के फ्रेडरिक मिस्त्रल थे, और दूसरे थे स्पेन के जोशे एकीगेरी। इन दोनों सज्जनों ने अपने-अपने देश के साहित्य में नए भाव भरे हैं, और प्राचीन काव्य की रक्षा भी की है। फ्रांस के उस विभाग में, जो 'प्रावेंस' कहलाता और सभ्यता की दृष्टि से बहुत प्राचीन समझा जाता है, मिस्त्रल का जन्म, सन् १८३० ई० में हुआ और उसी की सेवा में उनका समस्त जीवन बीता। इन्हे पुरस्कार ७४ वर्ष की अवस्था में मिला और योरपीय महायुद्ध के कुछ पूर्व ही, १९१४ में, इनका देहांत हुआ। जन्म से लेकर मृत्यु-काल तक यह अपने गाँव में रहे और उसी की सेवा में तन-मन-धन से लगे रहे। इनके जीवन का आदर्श हम भारतवासियों, विशेषतः हिंदी-भाषियों के लिये अनुकरणीय एवं उपादेय है। इनके पिता इन्हें वकील बनाना चाहते थे, पर वह थे बहुत बड़े ज़मींदार। प्रारंभ से ही मिस्त्रल को काव्य से प्रेम था। कहा जाता है कि यह छुटपन में भी फ्रेंच-भाषा की कविता लिखते थे। कारण यह था कि जैसे आजकल हिंदी में ब्रज-भाषा तथा खड़ी बोली का द्वंद्-युद्ध चल रहा है, उसी प्रकार प्रचलित फ्रेंच तथा प्रावेंस की ग्राम्य भाषा में भी कुछ संघर्ष था। गाँव में रहते-रहते मिस्त्रल को ग्राम-गीतों से बड़ा प्रेम हो चला, और यह उनका संग्रह करने लगे। स्वयं भी उसी भाषा में लिखना प्रारंभ कर दिया। बहुत दिनों के परिश्रम से इन्होंने एक महाकाव्य तैयार किया, जिसकी कीर्ति इनके सभी ग्रंथों से सर्वोपरि हो गई। इनका नाम है "मीरियो," (Mireio), और इसमें ग्राम्य जीवन—उसके रहन-सहन, त्योहार, भाव तथा विचार आदि—का वास्तविक चित्र खींचा गया है। 'मीरियो' एक देहाती ज़मीं-

दार की पुत्री होकर एक अकिंचन मज़दूर से प्रेम करती है। अंत में बेचारी की मृत्यु हो जाती है, पर उसके शब्दों में बड़ा आशा-पूर्ण एवं गंभीर संदेश मिलता है। कहीं-कहीं तो मिस्त्रल की पंक्तियों में कबीर तथा अन्य वैष्णवों की छाप-सी लगी जान पड़ती है। देखिए, ये पद कैसे कोमल तथा मधुर आकांक्षा-पूर्ण हैं—

" If thou the moon wilt be,
Sailing in glory,
I'll be the halo white
Hovering every night
Around and over thee.
If thou become a flower
Before thou thinkest,
I'll be a streamlet clear,
And all the waters bear,
That thou love drinkest."

इसी भाव का निम्न-लिखित गीत रैदास भक्त का है, जो इससे कम सुन्दर नहीं है—

प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी,
जाकी अँग-अँग बास समानी;
प्रभुजी, तुम घन हम बन मोरा,
जैसे चितवत चंद चकोरा;
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति बरै दिन-राती।

रैदास ने तो अपनी भक्ति का आदर्श ही यही बनाया था, और अंत में वह भी कह दिया है कि "ऐसी भक्ति करै रैदासा।" इससे अधिक छलकते हुए भावों से भरा देहात की स्त्रियों का

एक गीत है, जिसमें किसी भावुक प्रेमिका के हृदय की हसरतें छलकी पड़ती हैं। वह कहती है—

"जौ मैं होतिउँ कारी कोइलिया,
कुहुकि रहतिउँ राजा तोरे बँगले माँ;
जौ मैं होतिउँ आम की डरियाँ,
लटकि रहतिउँ राजा तोरी बगिया माँ।"

देखिए, कितनी सुन्दर भावनाएँ हैं! यदि वह कोयल होगी, तो उसे अपने प्रियतम के निवास-स्थान में ही कूक सुनाने में आनंद प्राप्त होगा। आम की डाल बनकर भी वह वहीं, अपने प्राणवल्लभ के बग़ीचे में ही, लटकना चाहती है।

'मीरियो' को प्रकाशित हुए बहुत दिन हो गए, लेकिन यह इतना सर्वप्रिय ग्रंथ हुआ कि इसके प्रकाशन की रजत-जयंती मनाई गई। अमेरिका के प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट आदि अनेक विदेशी महानुभावों ने भी इनकी रजत-जयंती के अवसर पर लेखक को बधाई भेजी थी। मिस्त्रल में जितनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा थी, उतनी ही सरलता एवं सुजनता भी। अपने देश में वह जितने लोक-प्रिय हो गए थे, उतना शायद ही कोई और विद्वान् हुआ होगा।

जोशे एकीगेरी

मिस्त्रल के साथी एकीगेरी स्पेनिश एकेडेमी (Spanish Academy) के प्रसिद्ध सदस्य थे। इनका जन्म सन् १८३३ में हुआ। यह मिस्त्रल के दो वर्ष पीछे मरे। स्पेनी साहित्य, विशेषतः वहाँ के नाट्य-काव्य, में इनका अपना अलग ही स्थान है। इनकी रचनाओं में मौलिकता के अतिरिक्त बड़ी निर्भीकता एवं व्यापकता रहती है।

यों तो स्पेन का साहित्य अनुवादों द्वारा परिचित रहा है, पर एकीगेरी की रचनाओं का महत्त्व कई कारणों से अधिक हो गया है। मिस्त्रल तो थे देहात के, और एकीगेरी थे नितांत नागरिक। स्पेन की राजधानी मैड्रिड में यह उत्पन्न हुए, वहीं इनका सारा जीवन कटा। प्रुडोम की भाँति इन्हें भी विज्ञान में बड़ी रुचि थी, और इन्होंने दर्शन तथा भूगर्भ-शास्त्र में बहुत कुछ अन्वेषण भी किया। अंतिम समय तो यह मैड्रिड-विश्वविद्यालय में रहे; पर इसके पूर्व वहाँ के राज्य-कर्मचारियों में इनका बड़ा उच्च स्थान था। यह क्रमशः कृषि, वाणिज्य तथा व्यवसाय आदि विभागों के प्रधान सचिव रह चुके थे। परन्तु इतने व्यस्त जीवन में भी इन्हें प्रारंभ से ही नाटकों के लिखने में बड़ी रुचि थी। शेक्सपियर की भाँति पहले तो यह यों ही इधर-उधर की कथाओं को घटा-बढ़ाकर प्रकाशित करते रहे; फिर दस-बारह वर्ष तक कुछ बहुत मौलिक काव्य नहीं लिखा—केवल एक नाटक की रचना की, जिसके जोड़ का दूसरा फिर बहुत दिनों में जाकर लिखा गया। तत्पश्चात् इन्हें यह धुन सवार हुई कि नाट्य-क्षेत्र में नवीन प्रणाली का साहित्य उपस्थित किया जाय। शीघ्र ही इन्होंने "Always Ridiculous" नामक एक नाटक लिखा। इसका नाम ही बड़ा मनोरंजक है। तभी से इनकी प्रतिभा के विकास में बड़ा परिवर्तन हो गया। अपने नाटकों में यह सांसारिक समस्याओं के नियंत्रण की खोज करने लगे। मद, मोह, लोभ, काम आदि विकारों एवं मानव-हृदय के उत्तरदायित्व में क्या युद्ध छिड़ता है, कैसे विजय प्राप्त होती और किस प्रकार मनुष्य कभी-कभी निराश हो उठता है—विशेषतः इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ निकालने का प्रयत्न करने लगे।

इनके नाटकों के नाम भी इसी कारण कुछ बेढब से हैं। वास्तव

में वे पुस्तकों के दार्शनिक तत्त्व के छोटे-मोटे चित्र-मात्र अथवा उनमें निहित ज्ञान-भांडार की कुंजी हैं। उनके एक नाटक का नाम है " Mad Man or Saint ? " अर्थात् " पागल या साधु ?"। इसमें भी बड़ा गूढ़ तात्त्विक दिग्दर्शन कराया गया है।

इन्हीं सब कारणों से एकीगेरी को नोबेल पुरस्कार मिला। सचमुच योरप को यदि बीसवीं शताब्दी में किसी सिद्धांत की आवश्यकता है, तो वह यह कि सच्चा जीवन सत्य के अन्वेषण में है, सुवर्ण में नहीं। इसी प्रकार के अनेक तथ्य एकीगेरी के ग्रंथों में मिलते हैं। श्रीमद्भागवत में भी लिखा है कि कलियुग के चार निवास-स्थानों में सुवर्ण भी एक है। यही बात गेटे ने अपने नाटक " फाउस्ट " में भी दिखलाई है। यदि योरप इन तथ्यों का रहस्य समझकर उस पर कार्य करने लगे, तो उसके बहुत-से कष्टों का निवारण हो जाय। एकीगेरी की श्रेणी के लेखकों ने योरप की आध्यात्मिक रक्षा करने में कुछ कम सहायता नहीं की है।

हेनरिक सिंकीवीच

सन् १९०५ में सबकी आँखें रूस के साहित्यिकों पर गड़ी हुई थीं, और योरप के समालोचक यही समझ बैठे थे कि हो-न-हो, इस वर्ष का पुरस्कार किसी बड़े देश के विद्वान् को मिलेगा। पर जब पोलैंड के हेनरिक सिंकीवीच (Henryk Sienkiewicz) का नाम प्रकाशित हुआ, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सिंकीवीच की अवस्था उस समय ६० वर्ष की थी, और अनुवादों द्वारा उनकी कीर्ति दूर देशों तक पहुँच चुकी थी। पोलैंड के लिथु-आनिया-प्रांत में, सन् १८४६ में, उनका जन्म हुआ था। वारसा के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके, सन् १८६३ के राजनीतिक

विप्लव के अनंतर, वह रूस चले गए। वहाँ एक पत्र के संपादक रहे, और फिर अनुभव प्राप्त करने के लिये योरप तथा अमेरिका घूमने गए। इस प्रकार संसार का ज्ञान प्राप्त करके वह, सन् १८८० में, घर लौटे, तो उनकी पत्नी का देहांत हो गया। इसी बीच में इन्होंने कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे; पर जिस पुस्तक के कारण इन्हे पुरस्कार मिला, वह १८९६ में लिखी गई। इस महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ का नाम है—" Quo Vadis ?" (कहाँ जाते हो ?)। । इसमें प्राचीन ईसाई-धर्म का अनुशीलन करके यह प्रमाणित किया गया है कि दैवी सत्य धर्म ही पाशविक बल पर विजय प्राप्त करता है। यही बात लार्ड बायरन ने अपनी कविता 'सेनाशरिब' में भी दिखाई है, और यही मत हमारे देश में भी प्रतिष्ठित है कि "सत्यमेव जयते नानृतम्।" यह ग्रंथ इतना सर्वप्रिय हो गया कि सिनेमा में इसका एक अलग फ़िल्म तैयार हुआ, जो अभी तक प्रचलित है। इस फ़िल्म में रोमन काल के अनेक अत्याचार-पूर्ण नारकीय दृश्य देखने को मिलते हैं।

इनके सभी ग्रंथों में ऐतिहासिकता की छाप-सी लग गई है। पोलैंड के बहुत कम लेखकों की पुस्तकों का अनुवाद अँगरेज़ी में हुआ है। पर सिंकीवीच की सभी रचनाओं के अनुवाद प्राप्य हैं, और इनके अनुवादक भी अँगरेज़ी-साहित्य के धुरंधर विद्वानों में हैं। इन्हें इतिहास से विशेष रुचि थी, और उसमें भी धार्मिक इतिहास के प्रति तो अटल श्रद्धा हो गई थी। इसी आध्यात्मिकता तथा सहानुभूति-पूर्ण श्रद्धा के कारण इनकी साहित्यिक सेवा आधी से अधिक धार्मिक सेवा कही जा सकती है; पर है वह उतनी ही धार्मिक, जितनी रवि बाबू की एक-आध कहानियाँ अथवा पुस्तकें राजनीतिक कही जा सकती है। साहित्य-क्षेत्र में इनका ध्येय सदा यह रहा है कि मानव स्वभाव की पाशविक प्रवृत्तियों पर आत्मा

की घोषणा की जाय, चाहे वह अपने देश के उदाहरणों से हो, या अन्य देशो के। इनकी पुस्तक "Pan Michael" में तो सत्रहवीं शताब्दी में तुर्कों के आक्रमणों का विशद वर्णन है, और "Without Dogma" में प्रेम-मिश्रित तथा कुत्सित जीवन का दृश्य दिखलाया गया है। "Knights of the Cross" में पोलैंड के उस घोर संग्राम की कथा है, जिसे ट्यूटन लोगों से, देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये, उस छोटे-से देश ने वीरता-पूर्वक निबाहा था। एक और ग्रंथ में आस्ट्रिया के राजनीतिक विकास का इतिहास लिखा गया है।

सन् १९१६ में सिकीवीच की मृत्यु हो गई। पर उस समय लड़ाई के तुमुल चीत्कार में उनके स्वर्ग-वास पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका। किंतु इसमें संदेह नहीं कि योरप के साहित्य में इस पोलिश विद्वान् का सुयश स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

कारडूकी

सन् १९०६ का पुरस्कार इटली के कवि कारडूकी को मिला; पर वह इतने वृद्ध हो चुके थे कि दूसरे ही वर्ष उनका देहांत हो गया। कारडूकी बोलोना विश्वविद्यालय में साहित्यिक इतिहास के प्रोफ़ेसर थे, और अपने क्षेत्र में यह बहुत अनुपम खोज का काम कर चुके थे। उस समय तक यह सर्वश्रेष्ठ इटैलियन कवि एवं समालोचक माने जाते थे। साथ-ही-साथ इनके लेखों में राजनीतिक छींटों की भी भरमार रहती थी, और कभी-कभी तो देश के दोनों दल इनसे घबरा उठते थे। उनका बाल्यकाल भी राजनीतिक वातावरण में बीता था, और इनकी थोड़ी ही अवस्था में इनके

डाक्टर पिता जेल में बंद कर दिए गये थे। १८ वर्ष की आयु में कारडूकी कविता लिखने लगे, और चर्च के ऊपर आक्षेप भी करने लगे।

इनके राजनीतिक विश्वासों में और बल आने लगा। पिता के राजनीतिक कार्यों के कारण इनके ऊपर भी सरकार की दृष्टि पड़ने लगी। फल यह हुआ कि जब यह अध्यापक नियुक्त किए गये, तो इसी वक्र-दृष्टि के कारण इन्हें पढ़ाने की आज्ञा नहीं मिली। पर इससे उनकी प्रगति में कोई रुकावट नहीं आई। उनका जीवन सच्चे विश्वास तथा काव्यमय निर्भीकता का जीवन था। इसी बीच में उनके पिता की मृत्यु हो गई और भाई दान्ते (Dante) ने आत्महत्या कर ली। जब इनके पुत्र हुआ, तो उसका नाम भी, भाई की स्मृति में, दान्ते ही रक्खा, क्योंकि प्राचीन इटैलियन कवि दान्ते की तुलना ही कारडूकी के जीवन का लक्ष्य था। पुत्री का नाम आपने रक्खा " Liberty ", अर्थात् स्वतंत्रता। इससे पता चलेगा कि इनमें कितना आदर्शवाद था, और इटली के प्रति कितनी हार्दिक भक्ति थी।

पिस्टिया में यह लैटिन तथा ग्रीक के प्रोफ़ेसर हो गए, और तभी से इनका यश बढ़ने लगा। यह लैटिन में भी काव्य करते थे, और जब इनकी एक राजनीतिक कविता " Hymn to Satan " प्रकाशित हुई, तभी से यह अकस्मात् प्रसिद्ध हो गए। बायरन ने अपने विषय में लिखा है कि " एक दिन मैं सोकर उठा, तो देखा, मैं यशस्वी हो गया हूँ। " * ठीक यही बात कारडूकी के लिये भी सत्य है। इस लंबी कविता ने कारडूकी को एक दिन में ही कीर्ति-शाली बना दिया, और फिर कवि ने अनेक उत्तम रचनाएँ

* " I woke up one morning and found myself famous."—*Byron.*

प्रकाशित कीं। सरकार भी उनसे प्रसन्न हो गई। फिर तो ४६ वर्ष तक वह एक ही स्थान पर प्रोफ़ेसर रहे, और वहीं निधन को प्राप्त हुए। वह शिक्षा-विभाग के मंत्री भी बना दिए गये। वहाँ विद्यार्थियों में ये इतने सर्वप्रिय हो गये कि दूर-दूर देशों से भी विद्या-व्यसनी सज्जन इनसे ज्ञान प्राप्त करने आने लगे। ये नवयुवक ज्ञान-पिपासु अपने गुरु कारडूकी की राजनीतिक सम्मतियों के प्रति भी सहानुभूति करने लगे, और फिर तो इनकी एक अलग पार्टी ही बन गई।

कविवर दान्ते के यह बड़े भक्त थे, और जब दान्ते के ग्रंथों के अध्ययनार्थ एक विद्वान् अध्यापक की आवश्यकता पड़ी, तो यही चुने गए। उनका कहना था कि आधुनिक कवि जिस प्रेम तथा जीवन का चित्रण करते है, वह न तो निःस्वार्थ ही रहता है, न आदर्श-पूर्ण। इसी से उनका सिद्धांत यह रहा कि—

" Vain are the joys of the present,
They come and they fade like a blossom
Only in death dwells the truth,
And loveliness but in past days "

कारडूकी की जो सर्वोत्तम कविताएँ हैं, उनका अनुवाद करना भी कुछ सरल काम नहीं, और विशेषतः अँगरेज़ी में। उनके ग्रंथों के जर्मन में अच्छे अनुवाद हुए हैं, और उन अनुवादकों में से दो को तो नोबेल-पुरस्कार भी मिल चुका है। एक तो हैं मॉमसन, और दूसरे हैं पॉल हेसे, जिनका उल्लेख आगे मिलेगा। अपनी सभी कविताओं में कारडूकी का लक्ष्य यह रहा है कि काव्य द्वारा देश की सेवा की जाय, राजनीति की छाप न लगाते हुए भी व्यंजना तथा लक्षणा शक्तियों की सहायता से नरम तथा गरम दल में सनसनी

फैला दी जाय। वह इसमें सफल भी बहुत हुए। कभी-कभी तो उनके मित्र तथा शुभचिंतक भी उनसे अप्रसन्न हो गए। कारण यह कि उनका आदर्श था स्वातंत्र्य—मानसिक, दैहिक तथा आध्यात्मिक। इसी से वह अँगरेज़ी कवि शेली के बड़े भक्त थे; क्योंकि वह भी "स्वतंत्रता-पूजक कवि" कहे जाते हैं। कला तथा धर्म में भी यही कारडूकी का आदर्श हो गया, और इटली के महाराज एवं महारानी ने उन्हें इसीलिये बुला भेजा। वह बेचारे सर वाल्टर स्कॉट की भाँति कुछ लँगड़े थे; पर जाने पर देखा कि वे लोग बड़ी सहानुभूति एवं श्रद्धा से पेश आए। तभी से महारानी से इनसे विशेष मैत्री हो गई। शीघ्र ही इन्हें लकवा मार गया, और महारानी ने इन्हें कष्ट से उबारने के लिये इनका पुस्तकालय इनसे ख़रीद कर फिर इन्हें दे दिया। लकवा मार जाने पर कारडूकी का जीवन कुछ अव्यवस्थित-सा हो गया। १९०४ ई० में सरकार ने इन्हें पेंशन दे दी। विद्यार्थियों ने भी इस समय बड़ा उत्सव किया, और देश को इनकी सच्ची योग्यता का और अधिक परिचय मिल गया। इसी बीच में इनके परमप्रिय शिष्य एवं सहकारी फ़ेरारी (Ferari) की मृत्यु हो गई। इससे इनका अंतिम जीवन बड़ा दुःखमय हो गया, यहाँ तक कि जब अगले वर्ष इन्हें पुरस्कार लेने जाना था, तो यह अपनी चारपाई से उठ भी नहीं सकते थे। स्वीडन के महाराज ने इस सम्मान के लिये अपना एक प्रतिनिधि इनके घर भेजा। दो ही महीने के भीतर इनकी मृत्यु हो गई। सहस्रों मनुष्य इनके शव के साथ गये। इटली के सर्वमान्य स्थान में, जो इँगलैंड का वेस्टमिंस्टर एबे कहलाता है, वह दफ़न किये गये। और, मरने पर भी उन्हें वैसा ही सम्मान दिया गया, जैसा जीवन-काल में उनके शिष्यों ने दिया था।

कारडूकी देश-भक्त थे, सच्चे कवि थे, स्वतंत्रता-प्रिय थे, इसी-लिये वह सर्वप्रिय भी हो गये। उनकी कविता में स्वतंत्रता के अति-रिक्त दो बातें दृष्टिगोचर होती हैं—एक तो शक्ति और दूसरी सहानुभूति। सच पूछिए, तो शक्ति सहानुभूति का ही फल है, और कारडूकी को भली भाँति विश्वास हो गया था कि वर्तमान जीवन-प्रणाली में लोग कोरी बातें बनाते हैं, सच्ची समवेदना नहीं प्रकट करते। इसी कारण कभी-कभी वह क्रिश्चियन-धर्म की बड़ी बुराई कर डालते और कहने लगते थे कि इससे अच्छा तो काफ़िरों का ही धर्म है, जिसमें सत्य तथा प्रेम का अधिक सम्मिश्रण देख पड़ता है।

अध्याय ३

किप्लिंग् और उनके समकक्ष

अभी तक पुरस्कार पानेवाले विद्वान् फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, पोलैंड, इटली तथा नार्वे के थे। इँगलैंड के संपादक तथा समा-लोचक-वर्ग घबरा रहे थे और पत्रों में अनेक अँगरेज़ लेखकों तथा कवियों के नाम निकलते थे। कहा जाता था कि इन्हें अगले वर्ष पुरस्कार मिलना चाहिए। इस नामावली में लॉर्ड मारले, पोयट लॉरिएट (राजकवि) रॉबर्ट ब्रिजेज़, टॉमस हार्डी आदि प्रसिद्ध साहित्यिकों के नाम थे। पर किप्लिंग् का नाम एक-आध ही लोगों ने लिया, और वह भी बहुत विलंब से। सन् १९०७ ई० में जब इनको अकस्मात् नोबेल-पुरस्कार मिलने की घोषणा हुई, तो देश-भर चकित हो गया। सबकी यही धारणा थी कि अँगरेज़ लेखकों में औरों को चाहे मिल जाय, पर यह पुरस्कार किप्लिंग् को इतनी जल्दी नहीं मिल सकता। इस विषय पर बहुत वाद-विवाद भी

समाचारपत्रों में चला; पर अंत में सबको यह विश्वास हो गया कि इन्हें पुरस्कार सर्वथा योग्यता के लिये मिला है, अन्य किसी कारण से नहीं।

रडयार्ड किप्लिंग

रडयार्ड किप्लिंग् का जन्म भारतवर्ष में ही हुआ था। इनके पिता जान लॉकवुड किप्लिंग् लाहौर में स्कूल ऑव इंडस्ट्रियल आर्ट के डाइरेक्टर थे, और यह भी अच्छे लेखक तथा चित्रकार थे। बलवे के आठ वर्ष बाद, सन् १८६५ ई० में हमारे चरितनायक का जन्म बंबई में हुआ, और भारत-भूमि में अपने जन्म के लिये किप्लिंग् को अब तक गर्व है। अपनी एक कविता में इन्होंने लिख भी दिया है कि यद्यपि और लोगो का बड़े-बड़े नगरों में जन्म हुआ है; पर "Of no mean city am I" मैं भी किसी साधारण नगर में नहीं पैदा हुआ हूँ। बाल्यकाल में यह बहुत दिनों तक भारत में रहे भी। माता-पिता दोनों ही साहित्यिक रुचि के थे। अपनी माता के ऊपर तो इनकी एक कविता भी है—"Mother O' mine" जान पड़ता है, प्रारंभिक जीवन पर इनकी माता का ही अधिक प्रभाव पड़ा है। पिता ज़रा अपने कार्य में अधिक व्यस्त रहते थे; पर उनको भी कथा-कहानियों का बड़ा शौक़ था। अपने सुपुत्र की कई पुस्तकों के लिये इन्हीं ने चित्र बनाए हैं। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि किप्लिंग् की पुस्तक "Beast and Man in India" इनके पिता की ही लिखी हुई है। कारण यह कि जब यह पुस्तक छपी, तब तक किप्लिंग् अच्छे लेखक हो चले थे, और संपादन-क्षेत्र में भी कुछ नाम कमा चुके थे।

भारतवर्ष छोड़ कर यह विलायत में कुछ दिन रहे, पर इनका

चित्त वहाँ नहीं लगा। यह फिर पंजाब लौट आए। प्रयाग के "पायनियर" तथा "सिविल मिलिटरी गज़ट" में इनके लेख बराबर निकलते रहे, और बहुत दिनों तक इनके जीवन का लक्ष्य संपादन ही था। एक बार ड्यूक ऑव कनॉट इनसे मिले और पूछने लगे कि भारतवर्ष में रहकर तुम क्या करना चाहते हो? उस समय यह लाहौर के "गज़ट" में ही काम कर रहे थे; अवस्था भी थोड़ी ही थी। तुरंत आपने उत्तर दे दिया—"थोड़े दिन तक तो मैं फ़ौज में रहना चाहता हूँ, और फिर पश्चिमोत्तर-प्रांत में जाकर टामियों (अँगरेज़ सिपाहियों) की दैनिक लीला का अध्ययन तथा चित्रण करना चाहता हूँ।" हुआ भी यही। Departmental Ditties, Barrackroom Ballads, Soldiers Three, Under the Deodars आदि इसी समय की पुस्तकें हैं। अँगरेज़-सिपाही भारतवर्ष में कैसा जीवन व्यतीत करते हैं, इसका ख़ाका किप्लिंग ने बड़े मनोरंजक ढंग से खींचा है। यों भी विशेषतः इस क्षेत्र में और भारतवर्ष के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा रहती है। इनके कितने ही ग्रन्थों में इस देश का वर्णन तथा उल्लेख है। इनकी एक कहानी का नाम है—"नौलखा।" एक दूसरी कविता में बेचारे गंगादीन की जीवन-यात्रा का दुःखद वर्णन है। अवश्य ही कुछ लोग कहा करते हैं कि भारत के प्रति यह सहानुभूति सच्ची नहीं है, यह केवल मज़ाक उड़ाने के लिये है। पर उन्होंने स्वयं अपनी एक पुस्तक की प्रस्तावना में साफ़-साफ़ लिख दिया है कि समुद्र-पार के इस देश से उनका विशेष प्रेम है। देखिए—

"Was there aught that I did not share
In vigil or toil or ease,—

One joy or woe that I did not know,
Dear hearts across the sea ?"

इनके एक-आध ग्रंथ का नाम बड़ा विचित्र-सा है। जैसे—"स्टाकी एंड को०", "Just So Stories," "Puck of Pok's Hill," कहानियों के भी नाम ऐसे ही हैं। "वायरलेस" आदि नाम तो जो हैं, सो हैं ही; पर सबसे विलक्षण नाम है—"००७"; और इसी प्रकार के नाम हमारी भाषा में डरावने समझे जाते हैं। किप्लिंग् की लेखनी के दो विशिष्ट गुण हैं—एक तो भय-हीन आदर्शवाद और दूसरा स्पष्ट वर्णन एवं चित्रण। इन्हीं गुणों के लिये यह नवयुवकों में सर्वप्रिय हैं, और इनकी एक-आध कविताएँ तो घर-घर पढ़ी जाती हैं। कहते हैं कि "If"-नामक कविता की सहस्रों प्रतियाँ लड़ाई में सिपाहियों को बाँटी गई थीं. और उनकी निराशा विजय-पूर्ण आशा में परिणत हो गई थी।

इनकी पुस्तकें दर्जनों पोथियों में हैं. और संसार की सभी सभ्य भाषाओं में उनका अनुवाद हो चुका है। नोबेल-पुरस्कार पाने के समय इनकी अवस्था केवल ४२ वर्ष की थी। इस हिसाब से पुरस्कार पानेवालों में यह सबसे नवयुवक हैं; क्योंकि अभी तक किसी को यह सौभाग्य ४६ वर्ष की अवस्था के पूर्व नहीं मिल सका है। एक-आध तो ६० के निकट पहुँच कर इस गौरव से सम्मानित हुए हैं।

यूकेन

सन् १६०८ का पुरस्कार फिर जर्मनी में गया; पर इस बार साहित्य के लिये नहीं, दार्शनिक अन्वेषण तथा तात्त्विक विवेचन के लिये। यूकेन वहाँ के कई विश्वविद्यालयों में इतिहास के व्याख्याता रह चुके थे। इन्हें भी यह आदर कुछ बहुत अधिक अवस्था में नहीं मिला। इनकी पुस्तकों के अनुवाद, पुरस्कार मिलने के

पूर्व भी, अमेरिका तथा योरप में सर्वप्रिय हो रहे थे। कारण यह था कि उस समय जर्मनी ही नहीं, योरप-भर में लोगो की रुचि सांसारिकता तथा भौतिकता की ओर अधिक हो रही थी, और सभी यह समझने लग गए थे कि आध्यात्मिक विकास एवं उन्नति संसार में शांति स्थापित करने में बिलकुल सहायक नहीं है। किंतु रुडल्फ़ यूकेन ने अपनी दार्शनिक तथा ऐतिहासिक पुस्तकों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि भौतिक तत्त्व तो जीवन का छोटा भाग है, विस्तृत तथा अधिक विकसित भाग तो आत्मा का क्षेत्र ही है।

ऐसे आदर्शवादी पुरुष के लिये महायुद्ध एक बड़ा भयावह वृत्तांत था। उन्होंने इसे " The saddest moment in German history " लिखा है। यह बड़े धर्म-भीरु तथा भक्त-प्रकृति थे, और कभी-कभी लोगों ने, दार्शनिक दृष्टि से बर्गसन आदि से इनकी तुलना की है। अपने धार्मिक सिद्धांत का विवेचन इन्होंने अपने नोबेल-व्याख्यान में किया है, जो स्टॉकहाम में, सन् १९०९ में, दिया गया था। नियम यह है कि संभवतः प्रत्येक पुरस्कृत व्यक्ति नार्वे में जाकर एक सार-गर्भित व्याख्यान दे। तदनुसार इन्होंने " Naturalism and Idealism " अर्थात् " प्रकृतिवाद और आदर्शवाद " की तुलनात्मक विवेचना की, और अंत में जाकर वही प्राचीन भारतीय सिद्धांत स्थिर किया, जिसके अनुसार " सत्यं शिवं सुन्दरम् " की ही उपासना सर्वमान्य है। इस संबंध का इनका " Religion and Life "-नामक ग्रंथ भी सराहनीय है। अपने देश की महत्ता सिद्ध करने के लिये भी इन्होंने दो-एक पुस्तकें लिखी हैं। एक तो है—" The Bearers of German Idealism" और दूसरी है—" The Historical Significance of the German People." अपने इन्हीं महत्त्व-पूर्ण संदेशों को प्रतिपादित करने के लिये यह अमेरिका भी बुलाए गए। वहाँ जाकर हार्वर्ड

कोलंबिया आदि विश्वविद्यालयों में इन्होंने व्याख्यान दिए, और "स्वीडिश एकेडेमी" के सदस्य भी चुने गए। ईसाइयों के ऊपर भी इन्होंने बहुत कटाक्ष किए हैं। एक ग्रंथ इनका इस संबंध का है—"Christianity and New Idealism", और इससे भी विरोधात्मक दूसरा ग्रंथ है—"Can We Still be Christians?" इन ग्रंथों को देखकर बाहर के विद्वानों ने इन्हें हॉलैंड, फ्रांस तथा इँगलैंड आदि देशों में निमंत्रित किया, और वहाँ धूम-धाम से इनके व्याख्यान हुए। तब से इनके गूढ़ दार्शनिक सिद्धांत तथा यह स्वयं दूर-दूर देशों में सर्वप्रिय हो गए।

सेल्मा लेजरलॉफ़

किंतु नोबेल-पुरस्कार अभी तक किसी महिला को नहीं मिला था, और सच्ची बात तो यह है कि लगभग तीस वर्षों के भीतर कुल मिलाकर केवल चार स्त्री विदुषियों को ही यह प्राप्त हुआ है। गत तीन वर्षों में यह श्रीमती डेलेड्डा तथा सिग्रिड अनसेट को मिला है और इसके पूर्व विज्ञान के लिये मैडम कुरी को दिया गया था। बस, यही चारों नोबेल-पुरस्कार की महिलाएँ हैं। यह हर्ष की बात है कि इस क्षेत्र की सर्वप्रथम साहित्यिक महिला उसी देश की हैं, जहाँ के स्वयं डॉक्टर नोबेल थे। इनका नाम सेल्मा लेजरलॉफ़ (Selma Laggerlof) था, और इन की अवस्था पुरस्कार के समय, किप्लिंग् के पश्चात्, सबसे कम रही है। ये दोनो ही बातें इनकी महत्ता की द्योतक हैं।

इनके नाम का ही अर्थ (Lagger=Laurel+Lof=Leaf) "लॉरेल की पत्ती" है, जो योरप भर में ख्याति की सूचक मानी जाती है। सेल्मा का प्रारंभिक जीवन अपने वृद्ध माता-पिता के साथ गाँव में बीता। इनकी माता स्वीडन के पैतृक राज-मंत्रियों के

कुल की कन्या थीं, और पिता फ़ौज में लेफ्टिनेंट थे। अतएव बालिका का बाल्य-काल बड़ा सुखमय रहा। पर एक दिन ठंड लग जाने से इन्हें लकवा मार गया, जिससे जीवन-भर इन्हें कुछ-न-कुछ कष्ट रहा। इसी कारण यह बहुत घूम-फिर नहीं सकती थीं, और अधिकतर मनोविनोद के लिये चिड़ियों, कुत्तों आदि के ही साथ समय बिताती रहीं। इनकी पुस्तकों में भी ऐसे पालतू पशुओं का विशेष उल्लेख है। इनके एक उपन्यास का नाम भी इनके गाँव के ही नाम पर है। इसकी कथा का अनुवाद-"मारबैका" (Marbacka) नाम से हुआ है। यहीं इन्हें देहाती गीत सुनने को मिले, जिनसे इनके जीवन में परिवर्तन होने लगा और साहित्यिक दृष्टि में भी और आदर्श आ गए। तभी से इन्होंने निश्चय कर लिया कि अपने देहात के सरल जीवन की कथाएँ उपन्यासों में लिपि-बद्ध की जायँ; क्योंकि ये भी साहित्य के एक बड़े अंग की पूर्ति करती हैं। अस्तु, इन्हीं कथाओं के पीछे यह रात-दिन पड़ी रहतीं। डिग्री प्राप्त कर लेने पर जब यह अध्यापिका हो गईं, तो भी पढ़ाना-लिखाना छोड़कर कहानियों के ही फेर में रहने लगीं। एक कहानी के लिये इन्हें पारितोषिक मिला, तभी से इन्होंने गंभीर साहित्य में पदार्पण किया। शीघ्र ही इनका एक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रशंसा में "लंदन-टाइम्स" ने ये शब्द लिखे—

"She is an idealist, pure and simple, in a world given over to realism; yet such is the perfection of her style and the witchery of her fancy that a generation of realists worship her."

एक विदेशी लेखिका के लिये 'टाइम्स' के ये शब्द बहुत हैं; क्योंकि बहुधा ये पत्र विदेशियों को हताश करने में ही अपना

कल्याण समझते हैं। जो कुछ हो, लोगों ने निश्चित रूप से यह जान लिया कि सेलमा में प्रतिभा है, और है मौलिकता के प्रयोग करने का एक निराला ढंग। बड़े लेखक इन्हीं दोनों के सम्मिश्रण से लेखक होते हैं। ये दोनों ही गुण उनकी पुस्तकों में मिलते हैं। अपनी कहानियों में यह स्वयं "The Emperor of Portugalia" को सर्वश्रेष्ठ मानती है; क्योंकि इसमें नग्न सत्य के साथ-साथ आदर्शवाद की सच्ची सहानुभूति है, देहाती गीतों के रहते हुए भी नाट्यमय काव्य एवं फड़कती हुई लेखनी का प्रभुत्व है। ज्यों ही इनकी दूसरी पुस्तक 'Invisible Links' प्रकाशित हुई, स्वीडिश-एकेडेमी की ओर से इन्हें एक विशेष छात्रवृत्ति मिली, जिसकी सहायता से यह फिर इटली आदि प्राचीन देशों की सभ्यता देखने गई। वहाँ से लौटने पर ३१ वर्ष की अवस्था में, इनका एक और महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसका नाम है—"Miracles of Anti-Christ"। वास्तव में इस पुस्तक ने ईसाई-धर्म के लिये वही काम किया है, जो गोस्वामी तुलसीदास के 'राम-चरित-मानस' ने शैवों तथा वैष्णवों को मिलाने के लिये किया। श्रीरामचंद्रजी के मुख से यह कहलाना—

शिवद्रोही मम दास कहावै;
सो नर सपनेहु मोहिं न भावै।
जो गंगा-जल आनि चढ़ैहैं;
सो सायुज्य मुक्ति नर पैहैं।

उन दिनों कुछ साधारण काम न था। वैष्णव तथा शैवों में घोर प्रतिस्पर्द्धा नहीं, वरन् वैर-भाव भी हो चला था। उस अवसर पर तुलसीदासजी की ही लेखनी में इसे सँभालने की शक्ति थी। इसी प्रकार सेलमा ने ईसाइयों और इतर धर्मावलंबियों अथवा ईसा के विरोधियों में पर्याप्त सहानुभूति उत्पन्न कर दी, जिसके

लिये दोनों उनके कृतज्ञ हैं। लड़ाई के दिनों में यद्यपि यह अपने स्वतंत्र सुखमय देश में थीं, तथापि क्रूर मानव स्वभाव के कुत्सित कृत्यों का समाचार पढ़-पढ़कर इनके कवि-हृदय पर बड़ा आक्रमण-सा होता था इन्हीं भावों का स्पष्टीकरण इन्होंने अपने उपन्यास " The Outcast " अर्थात् " अछूत " में किया है। इस कथा में दिखाया गया है कि मनुष्य-स्वभाव का पतन कहाँ तक हो सकता है, और किस प्रकार संसार कभी-कभी लोगों के गंभीर हृदय को समझने में धोखा खाता है। पर युद्ध के पूर्व भी ऐसे अवसर इनके जीवन में आ चुके थे जब इन्होंने इन बातो का अनुभव किया।

इनका दूसरा धार्मिक उपन्यास है—" जरुस्सलेम ", जो आँखों-देखी घटनाओं के आधार पर लिखा गया है। बात यह हुई कि सन् १८९९ ई० में स्वीडन की सरकार ने इन्हे पैलेस्टाइन जाने को इसलिये नियुक्त किया कि वहाँ जाकर अपने देश के कालोनी-वालो की दुर्दशा की जाँच करके, उसकी विस्तृत रिपोर्ट लिखें। मिस लेजरलॉफ ने रिपोर्ट तो लिखी ही ; दूसरा महत्त्व-पूर्ण कार्य यह हुआ कि एक उपन्यास भी लिखा गया। वहाँ के लोगो की दशा इतनी दयनीय थी कि उनके दुःखो का वर्णन हृदय-द्रावक है। वहाँ जाने से ईसाइयत की पौराणिक कथाओं से भी इनकी कुछ सहानुभूति बढ़ गई, और इन कथाओं का भी एक संग्रह " Christ Legends" के नाम से प्रकाशित हुआ। देश-भर के अध्यापकों की ओर से इनसे एक बच्चो का भूगोल लिखने का आग्रह किया गया, जिसे इन्होंने सहर्ष औपन्यासिक रूप में लिखा। आज तक यह भूगोल वहाँ के घर-घर में सर्वप्रिय हो रहा है। स्वीडिश एकेडेमी की ओर से इन्हें स्वर्ण-पदक तथा अपसाला-विश्वविद्यालय से एल्-एल्० डी० की डिग्री द्वारा इनको और भी सम्मान दिया

गया। जब पुरस्कार प्राप्त हुआ, तो यह भी एकेडेमी की सदस्या चुन ली गईं। इसमें कुल १८ सदस्य थे, जिनमें एक भी महिला न थी। इस उपलक्ष्य में स्वीडन के महाराज ने इन्हें भोज दिया, जिसके राजसी ठाट-बाट का वर्णन यहाँ अनावश्यक होगा। भोज के उपरांत मिस सेलमा ने एक छोटा-सा नाटकीय व्याख्यान दिया, जिसमें अपने स्वर्गीय पिता की दी हुई साहित्यिक शिक्षा की सहायता स्वीकार करने के अतिरिक्त अपना हर्ष प्रकट किया, और एकेडेमी को आशीर्वाद दिया।

इनके उपन्यासों में मुझे "अछूत" सबसे अच्छा लगता है; क्योंकि इसमें चरित्र-चित्रण गंभीर है। कथा भी महत्त्व-पूर्ण है, और वर्णन शैली थर्रा देनेवाली है। सेलमा ने एक-आध नाटक भी लिखे हैं, जिनका डेनमार्क तथा नार्वे आदि देशों में अभिनय भी हो चुका है। इन नाटकों की कथा तो अमेरिका के बायस्कोपों में भी दिखाई जा चुकी है। सच पूछिए, तो अमेरिका में यह कई बार बुलाई भी गई हैं, और वहाँ से इन्हें प्रेम भी बहुत है; पर इस वृद्धावस्था में इतनी दूर जाना संभव नहीं। दूसरी बात यह है कि अपने गाँव तथा देश से इनकी ममता इतनी अधिक है कि यह उसके मारे अन्यत्र जाना पसंद ही नहीं करतीं *।

पॉल हेसे

अभी तक जर्मनी के दो विद्वानों को पुरस्कार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। १९१० और १९१२ में दो और धुरंधर जर्मन पंडितों को यह सम्मान मिला। पॉल हेसे को इनकी सर्वतो-मुखी प्रतिभा के लिये, ८० वर्ष की अवस्था में, यह पुरस्कार दिया

* विशेष अध्ययन के लिये "Selma Laggerlof. The Woman, Her Work, Her Message" पढ़िए।

गया। महायुद्ध छिड़ने के चार महीने पूर्व ही इनका देहांत हुआ था। अपनी ८४ वर्ष की आयु में इन्होंने ६० से ऊपर तो नाटक लिखे, तथा कई उपन्यास, कितनी ही कविताएँ एवं कहानियाँ। निर्णायकों ने अपनी सम्मति प्रकट करते समय इनकी कला के विषय में लिखा भी था कि पुरस्कार इन्हें क्यों दिया गया है—

"As a mark of esteem of an artistry, finished and marked by an ideal conception, which he has shown during a long and significant activity as lyric dramatist, and as an author of romances and famous short stories."

इनका पूरा नाम था जान लुडविग पॉल हेसे (Johann Ludwig Paul Heyse)। इनके पिता कार्ल हेसे बर्लिन-विश्व-विद्यालय में भाषा-विज्ञान के व्याख्याता थे। अपने क्षेत्र में इनकी बड़ी ख्याति थी। बड़े बड़े विद्वान् तथा कलाविद् आपके घर बराबर आया करते थे। इनका प्रभाव पॉल की प्रतिभा पर विशेष-रूप से पड़ा। इन्हीं विद्वानों में एक कला-कौशल के विशेषज्ञ थे कूगलर, जिनकी कन्या से आगे चलकर पॉल का विवाह भी हुआ। इनकी माता की भी इस ओर बड़ी रुचि थी। अपनी "स्मृतियों" (Memoirs) में पॉल ने अपनी माता के महत्त्व-पूर्ण प्रभाव को स्वीकार भी किया है। बर्लिन-विश्वविद्यालय से यह बॉन चले गए, और वहीं इन्हें स्पेनी-भाषा के दिग्गज लेखकों की पुस्तकों से प्रेम हुआ। १९ वर्ष की ही अवस्था में यह इटली आदि देशों का पर्यटन भी कर आए, जिससे रोमन कवियों से विशेष रुचि हो गई। तभी से यह नाटक तथा उपन्यास लिखने लगे, और २४ वर्ष की ही आयु में बवेरिया के सम्राट् ने इन्हें अपने दरबार में बुलवा लिया। म्यूनिच में रहकर इनकी प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ;

वहाँ सत्संग भी बड़े-बड़े विद्वानों का रहा। सम्राट् का देहांत हो जाने पर उनके उत्तराधिकारी लूई गद्दी पर बैठे ; पर यह कवियों का आदर करना नहीं जानते थे। गीबेल-नामक एक कवि को इन्होंने देश-निर्वासन का दंड दे दिया। तभी से हेसे का चित्त दरबार में न लगा। तो भी, यह एक गाँव की कोठी में अंतिम दिनों तक वहीं रहे।

हेसे के ग्रंथों में बड़ी शक्ति और अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन है। इनका विश्वास 'प्रकृतिवाद' में है, और अपने सिद्धांतों को इन्होंने एक स्थान पर व्यक्त भी कर दिया है। अपने एक प्रसिद्ध ग्रंथ में यह कहते हैं—

"I never yet of virtue or of failing
Have been ashamed, nor proudly did adorn
Myself of one, nor thought my sins of veiling.
Him I call noble, who with moderation
Carves his own honour, and but little heeds
His neighbours' slander or their approbation."

इन पंक्तियों में वही तत्त्व है, जो संस्कृत के निम्नलिखित प्राचीन सिद्धांत में है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ;
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।

इस स्पष्टवादिता के साथ-साथ इनके काव्य में आदर्शवाद एवं भावुकता भी बहुत है। इनके छोटे उपन्यास न तो उपन्यास ही कहे जा सकते हैं, न गल्प ही। कभी वे पद्य में और कभी गद्य में मिलते हैं। पद्य की कहानियों में "Salamander"-नामक कविता सर्वोत्तम

समझी जाती है। इन्हें स्पेन एवं इटली के देहाती जीवन तथा काव्य का अनुकरण बहुत पसंद था, और रोमन सभ्यता को ही यह सौंदर्य की जननी मानते थे। एक-आध कहानियो में इन्होंने अपने पिता का ही चित्रण कर डाला है, और विशेष-रूप से ये स्त्री-हृदय की वेदनाओं तथा आशाओं के समझने में पटु कहे जाते थे। बहुत दिनों तक इनका नाम " The favourite of maidens " था। प्रेम अथवा सौंदर्य का विश्लेषण करने में यह सिद्धहस्त भी थे। इनका कहना था कि " The real sin is against nature "— वास्तविक पाप प्रकृति के विरुद्ध जाना ही है। इसके अतिरिक्त इनमें वर्णनशक्ति भी बड़े मार्के की थी। " At the Ghost Hour ", " The Dead Lake " और "Barbarosa" में इन्होंने दृश्यों का बड़ा विचित्र एवं रोमांचकारी वर्णन किया है।

इनके ग्रंथो का अनुवाद बहुत कम हुआ है, पर देहांत हो जाने के पश्चात् से इनकी कृतियों का विशेष आदर हो चला है। और इसमें संदेह नहीं कि जर्मनी के अमर कवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा रहेगा।

मॉरिस मेटरलिंक

दूसरे वर्ष बेल्जियम की बारी आई। लोग समझते थे कि रूस या अमेरिका को पुरस्कार दिया जायगा, और वे बड़ीही उत्सुकता से राह भी देख रहे थे कि अकस्मात् मॉरिस मेटरलिंक (Maurice Maeterlinck) का नाम प्रकाशित हुआ। मेटरलिंक ने साहित्य के अनेक क्षेत्रों में मौलिक कार्य किया था; और यद्यपि पुरस्कार के समय इनकी अवस्था पचास वर्ष से कम ही थी, तथापि फ्रेंच-भाषा में लिखने के कारण इनको बहुत ख्याति हो गई थी। इनका

जन्म तो हुआ था गेंट के एक प्रसिद्ध कुल में ; पर अधिकतर यह पेरिस में ही रहे, और वहीं की भाषा में इनकी मौलिकता का विकास भी हुआ। इनके पिता इन्हें वकील बनाना चाहते थे, और दो-एक वर्ष तक यह वकालत करते भी रहे। फिर फ्रांस जाकर कई विद्वानों से मेल-मुलाक़ात हो गई। वहीं से यह योरप-भर की साहित्यिक मंडली में हिल-मिल गए, और इनकी कीर्ति भी फैलती गई। इसी बीच में इनके पिता की मृत्यु हो गई, और यह, १८८६ ई० में, फिर बेल्जियम लौट आए। सात-आठ वर्ष अपने देश में रहकर यह फिर पेरिस लौट गये और वहीं अपना घर बना लिया। महायुद्ध के दिनों में इन्होंने स्वदेश की बड़ी सेवा भी की। फ्रांसीसी लोगों ने कितना ही कहा कि बेल्जियम-वासी होने के कारण यह फ्रेंच एकेडेमी के सदस्य नहीं हो सकते ; पर इन्होंने साहित्यिक ख्याति के लिये अपना स्वदेशानुराग छोड़ना पसंद नहीं किया।

पेरिस का वायुमंडल इन्हे सर्वथा अनुकूल प्रतीत हुआ, और यहाँ रहकर इन्होंने कई महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ लिखे। चार-पाँच वर्ष के भीतर ही इनके तीन उत्तम नाटक प्रकाशित हुए, जिनमें से अंतिम के ही कारण शायद इन्हें नोबेल-पुरस्कार दिया गया। इसका नाम है The Blue Bird—" नीली चिड़िया।" कई बार इसका अभिनय भी हुआ और अलग फ़िल्म भी बन गया है। Joyzelle और Monna Vanna-नामक दो और नाटक भी यहीं लिखे। पहले में दुःख-सुख की बड़ी अच्छी गंगा-जमुनी धारा बहाई है, और Monna Vanna में तो इन्होने अपनी पत्नी का ही चित्रण कर डाला है। कुछ लोगों की सम्मति है कि इस नाटक की नायिका मोना वना मेटरलिंक की सभी नायिकाओं में सर्व-श्रेष्ठ है। नायिका का पुरातन प्रेमी और उसका नवीन पति, ये

दोनों बड़े ही सजीव पात्र हैं, जिनकी प्रतिभा में मध्यकालीन योरप की कुछ झलक मिलती है। The Betrothal-नामक एक दूसरे नाटक पर लोग इनसे बहुत चिढ़े, और इनका बड़ा विरोध भी हुआ; क्योंकि उसकी नायिका तथा उसकी सहेलियों में यत्र-तत्र कुत्सित वासनाओं तथा संकुचित हृदयो का परिचय मिलता है। पर शीघ्र ही इनके दूसरे ग्रंथो ने इस विरोध पर विजय प्राप्त कर ली, और इनके नाटक धड़ाधड़ पढ़े जाने लगे। पॉल हेसे ने एक नाटक 'मेरी मैगडलीन' पर लिखा था, उसी की देखा देखी मेटरलिंक ने इसी प्रसिद्ध ईसाई सती पर एक दूसरा नाटक लिखा। पर हेसे को यह पसंद नहीं आया, और दोनों विद्वानो में कुछ भेद पड़ गया। यह नाटक तो धार्मिक है, पर इनके अधिक ग्रंथों में प्रायः करुण-रस का ही प्राबल्य पाया जाता है। दुःखांत नाटकों में सबसे प्रौढ़ Paolo et Francesca और Pelleas et Melisande समझे जाते हैं, और इन दोनों की कथाएँ भी एक-सी ही हृदय-द्राविणी हैं। एक में तो प्रेमी की मृत्यु के पश्चात् नायिका के कन्या उत्पन्न होती है, और फिर स्वयं उसकी मृत्यु हो जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि मेटरलिंक भवभूति के उस सिद्धांत के अनुयायी हैं, जिसके अनुसार उन्होने कहा है—"एको रसः करुण एव" अर्थात् संसार में और कोई रस है ही नहीं, सबमें करुणरस ही व्याप्त है। ठीक यही बात शेली ने भी लिखी है—

"Our sincerest laughter is with tears fraught,
Our sweetest songs are those that tell of saddest thought"

इसी कारण एक प्रसिद्ध समालोचक ने मेटरलिंक के विषय में लिखा है—

"His master-tone is always terror—terror, too,

of one type—that of the church-yard. He is the poet of the sepulchre like Poe." *

अर्थात् यह स्मशान के कवि हैं, और इनमें भय के सिवा और कुछ मिलता ही नहीं।

महायुद्ध के समय इनका दृष्टिकोण परिवर्तित हो चला, और इसका इनके जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव भी पड़ा। फल यह हुआ कि तब से यह आध्यात्मिक तत्त्वों का अन्वेषण करने लगे और अपने सारे ग्रंथों में इसी महत्त्व-पूर्ण खोज की चर्चा चलाते रहे। The Unknown Guest (अज्ञात अतिथि), Belgium at War तथा The Great Secret आदि कई ग्रंथ उसी समय के लिखे हुए हैं। तभी से सभ्य मानव-जीवन के प्रति इन्हें कुछ घृणा-सी हो गई, और अधिकतर यह फूलों, बगीचों एवं पशु-पक्षियों में रहने लगे। मधुमक्खियों से इन्हें विशेष प्रेम हो गया। अपने एक ग्रंथ में इनका पूर्ण उल्लेख भी कर दिया है। इसका नाम है The Spirit of the Hive अर्थात् 'मधुमक्खी के छत्तों की आत्मा'। तभी से इनके लिये विश्व की सारी विवेचना इन्हीं छत्तों में केंद्रीभूत हो गई—जीवन उनके लिये मंदिर अथवा उद्यान में परिणत हो गया, और मनुष्यों की दशा को यह मक्खियों की उधेड़-बुन समझने लगे। इस समय के पश्चात् के कई ग्रंथों में इन्होंने एक-आध ऐसी आध्यात्मिक बातें लिखी हैं, जो धीरे-धीरे सत्य मानी जाने लगी हैं। इनके अंतिम नाटकों में कुछ भाग्यवादिता की भी झाईं आने लगी है, पर अंततः यह आध्यात्मिक विकास के पक्षपाती हैं। और, जैसा यह एक गद्य-पुस्तक में लिखते हैं, इनका विश्वास है कि—

* The Plays of Maurice Maeterlinck (Chicago, 1894-96.)

"A time may come perhaps—and many things herald its approach—a time will come, perhaps, when our souls will know each other without the intermediary of the senses." *

आध्यात्मिकता का यह प्राबल्य सचमुच धीरे-धीरे वैज्ञानिक एवं वैयक्तिक विकासवाद द्वारा सिद्ध होता चला जा रहा है। सर ऑलिवर लॉज तथा प्रोफेसर एन्स्टीन-जैसे दार्शनिक विज्ञान-वेत्ता भी इसे मानने लग गए हैं।

जेर्र्ट हातमाँ

दो वर्ष पूर्व ही जर्मन विद्वान् हेसे को पुरस्कार मिला था, अतएव जब सन् १९१२ में फिर यह घोषणा हुई कि जेरर्ट हातमाँ (Gerhart Hauptmann) को उनके नाटकों की अपूर्व प्रतिभा के लिये यह सम्मान प्राप्त हुआ है, तो साहित्यिक क्षेत्र में खलबली-सी मच गई। कारण यह था कि हातमाँ ने अपनी पुस्तकों में समाज की बड़ी कड़ी आलोचना की थी, और सभी उनसे असंतुष्ट थे। इनका जन्म एक जुलाहा-घराने में हुआ था, और यह हेसे से ३२ वर्ष छोटे थे। साइलीसिया में समुद्र के किनारे, एक गाँव में, इनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ, जहाँ इनके बाबा कपड़े बुना करते थे। प्रारंभ में इन्हें शिल्प-कला से रुचि हुई, और इसके लिये यह इटली में पढ़ने चले गए। फिर कृषि-शास्त्र तथा नाटकों की ओर झुके; पर इनकी ज़बान में कुछ तुतलाहट थी, जिसके कारण यह अभिनय नहीं कर सकते थे। अतएव निराश होकर केवल नाटक लिखकर ही संतोष करने लगे।

---

* Treasure of the Humble.

२३ वर्ष की अवस्था में, १८८५ ई० में, इनका विवाह एक धनाढ्य घराने में हो गया, और तभी से यह बर्लिन में रहने लगे। वहाँ एक नवीन समाज "फ्री स्टेज सोसाइटी" के नाम से खुल गई, जिसका ध्येय नाट्यक्षेत्र में स्वतंत्रता लाना था। इसके संचालक ब्रह्म नामक एक महाशय थे, जिनका हातमाँ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसी स्वातंत्र्य-पूर्ण वातावरण में रहकर हातमाँ ने कई प्रभावशाली नाटक लिखे। एक में तो इन्होंने अपने पूर्वजों का ही चित्र-सा खींच डाला है, जिसका नाम है The Weavers (जुलाहे)। इसमें उन्होंने पूँजीपतियों के कठोर हृदय के अतिरिक्त दरिद्र मज़दूरों की आर्त्त-दशा का वर्णन करते हुए आधुनिक योरप के जटिल जीवन का एक दृश्य दिखाया है। सरलता के मारे बेचारे जुलाहे महाराज के पास अपनी अकिंचनता का दुःख-पूर्ण संदेश भेजना चाहते हैं, पर अंत में उन्हें अपने बापदादों के करघों और झोपड़ों पर ही संतोष करना पड़ता है। इस ग्रंथ से हातमाँ की हार्दिक सहानुभूति का परिचय मिलता है, और यह पता चलता है कि यद्यपि वह स्वयं धनी हो गए थे, पर उन्हें अपने ग़रीब पूर्वजों एवं भाइयों की सुध नहीं भूली थी।

इनके सभी नाटकों को पढ़ लेने से यह प्रतीत होने लगता है कि जैसे दो भिन्न पुरुषों ने ये पुस्तकें लिखी हैं। कभी-कभी तो यह बड़े सहृदय एवं सरल-प्रकृति भलेमानुस की भाँति लिखते हैं, और फिर अन्यत्र एक उजड्ड झगड़ालू सिपाही बनकर पात्रों में जीवन डाल देते हैं। इन सभी नाटकों में शायद इन्हें The Sunken Bell (डूबी घंटी) के कारण नोबेल-पुरस्कार मिला है। यों तो And Pippa Dances भी बहुत अच्छा है, और इसे पढ़कर ब्राउनिंग की प्रसिद्ध दार्शनिक कविता Pippa Passes का स्मरण हो आता है। पर इस नाटक में कुछ औपनिषदिक तत्त्व-

सा जान पड़ता है, और ऐसा भासित होता है, जैसे "नौका डूबी" का आधार लेकर किसी भारतीय विद्वान् ने उपनिषदों की कथा का सार जर्मन में कर दिया हो। इसका जर्मन भाषा का नाम है Die Versunkene Glocke. लेखक ने स्वयं इसे परियों का खेल कहा है। यों तो इस कहानी का मूल आधार ग्रिम के प्रसिद्ध संग्रह में मिल जाता है ; पर इसमें जो आधुनिकता डाल दी गई है, वह लेखक की अपनी है। हेनरिक घंटी वाला बेचारा बहुत परेशानी में नई घंटियाँ बनाना चाहता है, और उसकी पत्नी मैग्डा उसे सहायता देती है। ये दोनों पति-पत्नी मानों पुरुष एवं प्रकृति हैं, जो परस्पर मिलकर सत्य की खोज करते हैं। बीच में रातन-देलीन (Rautendelein) माया का-सा काम करती है, और गाँव की बुढ़िया वितिकिन (Wittikin) उसे तत्त्व की प्राप्ति में वास्तविक सहायता करके, आध्यात्मिकता का ही स्वरूप बन जाती है—यों भी तो वह गाँव की पुजारिन है। बेचारा हेनरिक अपने लक्ष्य से दूर रह जाता है अवश्य ; पर जब वह लौटकर आता है, और लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं, तो वह सच्चे जिज्ञासु की भाँति उत्तर देता है—

"That man am I, and yet * ** another man.

Open the windows—Light of God stream in" *

ये वाक्य वैसे ही हैं, जैसे उपनिषद् के "तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय", अथवा बाइबिल के "God said—'Let there be light' and there was light" ये शब्द। इनमें

* The Sunken Bell, Act III (New York, Page & Co.).

सचाई है, ज्ञान का प्रकाश है, और सच्चे जिज्ञासु के परिश्रम का फल है।

यह नाटक यद्यपि रंग-मंच पर उतना प्रभावोत्पादक नहीं सिद्ध हुआ, जितना The Assumption of Hannele अथवा The Weavers ; परंतु इसके आंतरिक तत्त्व को दर्शकवृंद नहीं, केवल पाठक-वर्ग ही, समझ सकते हैं। पुरस्कार मिलने के पश्चात् इन्होंने और कितने ही उपन्यास एवं नाटक लिखे हैं, जिनमें से कई तो अमेरिका आदि दूर देशों में भी ख्याति पा चुके हैं। इनके नाटकों का संग्रह, कई पोथियों में, अमेरिका से प्रकाशित भी हुआ है * और बहुतो के अँगरेज़ी अनुवाद हो चुके हैं। 'हैनेले' के प्रकाशन के पश्चात् ही, जर्मनी में, इसके विषय में बड़ी हलचल मच गई, और सरकार ने इसका अभिनय रोकना चाहा। शीघ्र ही लोगों ने इसे अमेरिका में मंच पर खेलना चाहा। वहाँ भी समाज-सुधारको ने यही हुल्लड़ मचाया, और यह उड़ा दिया कि यदि इसका अभिनय हुआ, तो लेखक, अनुवादक, प्रकाशक तथा प्रधान अभिनेत्री—सभी जेल भेज दिए जायँगे। यह सुनकर न्यूयार्क के प्रसिद्ध Fifth Avenue Theatre ने कई लेखकों, समालोचकों तथा संपादकों को इसके एक छोटे अभिनय में निमंत्रित किया। फिर क्या था, दूसरे ही दिन समाचार-पत्रों में नाटक की प्रशंसा के पुल बँध गए ! न कोई पकड़ा गया, न कोई जेल भेजा गया, और सर्वसाधारण के लिये भी नाटक खेला गया !

हातमाँ महोदय स्वभाव के बड़े सीधे और भावुकता की मूर्ति हैं। विद्यार्थियों की भाँति विद्याव्यसनी और वैसे ही उत्साही ; पर

* Hauptmann's Dramatic Works (8 Volumes Huebsch, New York, 1915-25.)

गर्व-हीन होते हुए भी, इन्होंने यह ख्याति प्राप्त की है। इनके जोड़ के नाट्यकार जॉन गैल्सवर्दी ही माने जाते हैं। ये दोनों ही सामाजिक बंधनों से मुक्त रहनेवाले एवं संसार के झंझटों से भागनेवाले सच्चे ज्ञानान्वेषी हैं। दोनों के ही साहित्यिक उद्देश्य एक-से है। वे चाहते हैं कि नाटकों द्वारा साधारण जनता में केवल मनोरंजन उत्पन्न करना ही लक्ष्य न हो, वरन् उन्हें शिक्षा मिले और उनकी उन्नति हो। दोनों में ही आदर्शवाद एवं सत्य का निर्दशन है, और दोनों आध्यात्मिक रहस्यों के प्रेमी है। दोनों की तुलनात्मक विवेचना पर एक ग्रंथ * भी लिखा गया है। हातमाँ पर तो और भी एकआध ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं †। हातमाँ ने अभी हाल में एक उपन्यास लिखा है—The Island of the Great Mother, जिसमें योरपीय समाज का अच्छा ख़ाका खींचा गया है। एक पुस्तक में उन्होंने ईसा-मसीह के ऊपर भी कुछ छींटे उड़ाए हैं। उसका नाम है The Fool in Christ: Emanuel Quint; पर सदैव ही इनका वास्तविक ध्येय रहा है—सत्य की खोज करना और उसकी प्राप्ति के लिये निष्पक्ष तथा निर्भय होकर स्पष्टवादिता-पूर्वक लेखनी उठाना।

---

* Gerhart Hauptmann and John Galsworthy. a Parallel by W. H P. Trumbaeur (Philadelphia, 1917).

† Nature Background in the Dramas of Hauptmann (University of Pennsylvania, 1918).

अध्याय ४

रवींद्रनाथ तथा रोमे रोलाँ

हातमाँ से एक वर्ष बड़े होने पर भी रवि बाबू को यह पुरस्कार एक वर्ष पीछे मिला है। १९१३ ई० में, जब इनकी अवस्था ५२ वर्ष की थी, इन्हे यह सम्मान प्राप्त हुआ। क्यों ?—" For, reasons of the inner depth and the high aim revealed in his poetic writings; also for the brilliant way in which he translates the beauty and freshness of his oriental thought into the accepted forms of western *belles-lettres.*" *

इन्हीं शब्दों में निर्णायकों ने इनकी प्रशंसा की है, और यह सर्वथा उपयुक्त है। परन्तु अँगरेज़ी में इनके ग्रंथों का अनुवाद होने के पूर्व स्वीडन के विद्वानों को इनका गौरव ज्ञात था। जैसा कि अर्नेस्ट रीज़ महोदय ने लिखा है, एक स्वीडन के ही पंडित के प्रस्ताव पर यह पुरस्कार इन्हे मिला है। यह समाचार जब रवि बाबू को मिला, तो हर्ष तथा खेद-पूर्वक आपने कहा †—" They have taken away my refuge " अर्थात् इन लोगों ने तो मेरी शांति छीन ली। इस वाक्य में ही विश्व-कवि रवि बाबू की सारी प्रतिभा की संपत्ति भरी है। प्रारंभ से ही वह शांति एवं एकांत के प्रेमी रहे हैं, और अब भी अपने शांति-निकेतन में वह मनु भगवान् तथा अपने पिता महर्षि देवेंद्रनाथ के आदर्शों को जीवित रखने का महत्वपूर्ण परिश्रम करते रहते हैं।

---

* Inscription with the Nobel Prize Award in Literature, 1913.

† *Rabindranath Tagore a Biographical Study* by Ernest Rhys (New York, 1915).

संवत् १९१८ में इनका जन्म कलकत्ते के प्रसिद्ध ठाकुर-वंश में हुआ, जिनमें महाराज सर सौरींद्रमोहन ठाकुर बड़े ही प्रभावशाली कला-प्रेमी हो गए हैं। इनके पिता भी महाराज हुए होते; पर महर्षि होना ही इन्हें अधिक पसंद आया। इन्हीं देवेंद्रनाथ के सात सुपुत्रों में रवि बाबू सबसे छोटे हैं। इनकी माता छुटपन में ही मर गई थीं, जिससे बाल्यावस्था में यह प्रायः पिता के ही साथ रहा करते थे। पिताजी भी अधिकतर बाहर ही घूमा करते थे। बस, उन्हीं के साथ यह भी थोड़ी ही अवस्था में, पंजाब आदि प्रांतों में, हो आए थे। अपनी स्मृतियों * में इन्होंने इस समय का बहुत विशद वर्णन किया है। आप लिखते हैं कि नौकर घर-भर के बच्चों को परेशान किया करते थे, और कभी-कभी तो दिन-भर एक ही स्थान पर बैठाए रहते थे। कई पाठशालाओं में पढ़ने गए, पर कहीं भी चित्त नहीं लगा। सभी उन्हें कारागार-सदृश दिखलाई देती थीं। अपनी एक कहानी में जहाँ इन्होंने छोटे छोकरे का चित्रण किया है, वहाँ मानों अपनी ही बाल्यावस्था का वर्णन कर दिया है। इस प्रकार कई स्थलों पर अपने प्रारंभिक जीवन के दृश्य इन्होंने, अपनी पुस्तकों में, चित्रित कर दिए हैं, जिनसे पता चलता है कि उस समय का इनके भावी जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा है।

पिता के साथ हिमालय की ओर घूमते समय इन्होंने कुछ कविताएँ लिखीं। और भी बहुत-सा काव्य 'भानुसिंह' नाम से लिखा, जो कई स्थानों में प्रकाशित भी हुआ, और लोग समझने लगे कि भानुसिंह कोई प्राचीन मैथिल कवि हो गए हैं। इसी हिमालय-यात्रा में, आधुनिक शांति-निकेतन से इनका परिचय

* *My Reminiscences* by Tagore (New York, Macmillan, 1917).

हुआ ; क्योंकि इसी बोलपुर-स्थान पर इनके पिता जी ठहरते थे, उन्हें यहीं शांति मिलती थी। इस यात्रा में बालक रवि को अनेक दृश्य देखने को मिले, और कुछ मनोरंजक घटनाएँ भी हुईं। उस समय दूर-दूर प्रांतों में आना-जाना इतना सरल न था, जितना आजकल। सबसे बड़ी बात यह थी कि बालक को अभी तक कहीं बाहर जाने का अवसर भी नहीं मिला था, जिसके कारण इस यात्रा का उसके दृष्टिकोण पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अपनी जीवन-स्मृति * में यह लिखते हैं—" बड़े से मकान में, जहाँ परिवार के सभी छोकरे-छोकरी एक स्थान पर रहा करते थे, नौकरों के कारण बड़ा कष्ट होता था। कभी तो कई दिन तक बड़े बूढ़ों से मिलने का अवसर ही न मिलता, कभी नौकर शरारत के मारे हमारा दूध ही पी जाते, और कभी-कभी तो घंटों एक जगह बैठाए रहते।" एक घटना का वर्णन इस ग्रंथ में विशद रूप से है। नौकर ने इन्हें एक जगह बैठाकर कहा—" यहीं बैठे रहो, और जब तक मैं न आऊँ, इस रेखा के बाहर पैर मत रखना।" यही कहकर उसने इनके चारो ओर एक परिधि खींच दी। बस, बेचारे सीता की भाँति लक्ष्मण की खींची हुई रेखा के भीतर ही चुपचाप बैठे रहे। न खाना मिला, न पानी! इसी प्रकार इस पुस्तक में लड़कपन की पाठशाला की भी संस्मृतियाँ हैं, जिससे प्रकट होता है कि प्रारंभ से ही इन्हें अध्यापकों के अत्याचार से घृणा हो गई थी। कभी बेचारे पाठ न याद करते, तो घंटों धूप में खड़ा रहना पड़ता था। यह व्यवहार इन्हें विशेष अखरता था ; क्योंकि छुटपन में ही माता का देहांत हो जाने से इनके जीवन में एक अभाव-सा रह गया था, जिसकी पूर्ति इनके पिताजी किसी प्रकार प्रगाढ़ प्रेम से भी न कर सकते थे।

---

* *My Reminiscences* (Macmillan & Co., Ltd.).

युवावस्था में इन्होंने बंगाल के वैष्णव कवियों, विशेषतः विद्यापति एवं चंडीदास का अनुकरण करके काव्य प्रारंभ किया। बीस वर्ष के पूर्व ही "प्रभात-संगीत" तथा "संध्या-संगीत"-नामक इनके दो संग्रह प्रकाशित हुए, और तदनंतर तेईस की अवस्था में इनका विवाह हो गया। पिताजी का विचार था कि देहात जाकर यह गंगाजी के किनारे ज़मींदारी का कारबार देखते रहें; पर इन्हें यह बहुत पसंद नहीं था। फिर भी प्रकृति-प्रेम के कारण ही यह 'शिलैदा' के इलाके पर तैनात हुए, और वहाँ का सांसारिक अनुभव इन्हें बड़ा ही हितकर सिद्ध हुआ। साधारण जनता का नग्न जीवन इनके सम्मुख आ गया, कलकत्ते के जीवन की अपेक्षा, जिसमें इनका बाल्यकाल बीता था, वह अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगा। यहीं इनके एक-आध नाटक लिखे गए, जिनमें से प्रधान "राजा-ओ-रानी" है। कितनी ही गल्पें भी लिखीं। "माली"-नामक ग्रंथ* के अधिकांश अंशों का मसाला भी यहीं के जीवन का फल-स्वरूप जान पड़ता है। इस प्रकार लेखनकाल के कोई सत्रह वर्ष इन्होंने गंगा-तट पर व्यतीत किए, और बड़े सुख से रहे। कई बच्चे भी यहीं हुए, और देहात के लोगों से भी बहुत प्रेम-भाव हो गया। बीमारों की दवा-दारू करना, उनके शुद्ध-सरल जीवन का अध्ययन करना तथा उनके दुःख-सुख में सम्मिलित रहना—यही वहाँ के जीवन का ध्येय था। एक बार उधर अतिवृष्टि के कारण धान की फ़सल न हुई, और अकाल पड़ गया। इनकी सहानुभूति किसानों के साथ थी, और यह उनके प्रतिनिधि-से बन गए। अँगरेज़ों तथा अँगरेज़ी सरकार के नौकरों से इसी कारण खटपट होने लगी, और वे इन्हें राष्ट्रद्रोही एवं बाग़ी कहने लगे। पर इनका

---

* *The Gardener*, जिसका अनुवाद "बाग़बान" नाम से पं० गिरिधर शर्मा तथा "माली" नाम से पं० सूर्यनारायण चौबे ने हिंदी में किया है।

आदर्श तभी से केंद्रीभूत होकर सरलता तथा प्रकृति-परायणता की ओर जा टिका। युवावस्था में यह जितने ही ठाट-बाट से रहते थे, जितने ही समाजप्रिय थे, उतने ही अब सीधे-सादे तथा एकांत-प्रिय हो गए।

इसका कारण एक और भी था। इसी बीच में इन पर पारिवारिक विपत्तियाँ आ पड़ीं। पहले तो पत्नी का स्वर्गवास हो गया; फिर कुछ ही महीनों के भीतर लड़की का भी देहांत हुआ। थोड़े ही दिनों बाद सबसे छोटा लड़का भी चल बसा। पत्नी, पुत्र एवं पुत्री, तीनों ही इनके परम प्रिय थे, विशेषतः पत्नी तो इनकी प्राण-प्रिया थीं। इन आकस्मिक घटनाओं के कारण इनके जीवन में कुछ विषण्णता आ गई। अवस्था भी अब चालीस की हो चली थी, और देहात के दुःख-पूर्ण जीवन को देखकर इनको गाँव के लोगों की सहायता करने के लिये एक समस्या सूझी थी, उसमें भी बाधा पड़ गई। इनकी इच्छा थी कि अपने पिताजी के प्रिय स्थान बोलपुर में ही एक छोटा-मोटा उपनिवेश तथा आश्रम खोलें। इन सब झमेलों के कारण इनका चित्त बड़ा उद्विग्न हो उठा, और इन्हें आध्यात्मिक तथ्य तथा धार्मिक रहस्यों की ओर बड़ी रुचि होने लगी। इसी समय के विषय में इन्होंने लिखा है—" This death time was a blessing to me. I had through it all, day after day, such a sense of fulfilment, of completion, as if nothing were lost I felt that if even a single atom in the universe seemed lost, it would not really be lost......... I knew not what death was It was perfection—nothing lost ! " *

---

* *Rabindranath Tagore* by Ernest Rhys, (Macmillan & Co.) Page 18.

थोड़े ही दिन बाद यह तबीयत बहलाने के लिये योरप तथा अमेरिका चले गए। तब तक इन्हे पुरस्कार नहीं मिला था। कारण यह था कि इनकी पुस्तकों का अनुवाद ही नहीं हुआ था। अमेरिका जाने का एक यह भी उद्देश्य था कि उस देश की कृषि-संबंधी उन्नति से लाभ उठाकर अपने अनुभवों का प्रयोग बोलपुर वाले आश्रम में करें। इसीलिये अपने साथ सब से बड़े लड़के रथींद्रनाथ को भी ले गए। सन् १९१२ ई० की बात है, वहाँ एक सज्जन वसंतकुमार राय महोदय ने इनसे नोबेल-पुरस्कार के संबंध में वार्तालाप किया, और यह कहा कि संभवतः अगले साल आपको यह पुरस्कार मिले! इसी भावना से प्रेरित होकर लोगो ने इनसे अपने ग्रंथों के अँगरेज़ी-अनुवाद के लिये भी कहा। इसका विश्वास स्वयं ठाकुर महाशय को नहीं था, और न उन्हे इसके लिये कोई विशेष उत्कंठा ही थी। हाँ, इतना उन्होंने अवश्य कहा कि "यदि कभी यह पुरस्कार मुझे मिलेगा, तो उसका सारा रुपया बोलपुर-पाठशाला में एक व्यापारिक विभाग खोलने में लगाऊँगा *।

बात ठीक निकली, और दस महीने के बाद ही इनके पुरस्कृत होने की घोषणा प्रकाशित हुई। कितने ही लोग कहते थे कि वास्तव में रवि बाबू ने प्रत्येक विभाग में कुछ-न-कुछ लिखने के लिये टाँग अड़ा दी है, और सचमुच इन्हे पुरस्कार नहीं मिलना चाहिए था। परन्तु निर्णायकों ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी थी—"For reason of the inner depth and the high aim revealed in his poetic writings; also for the brilliant way in which he translates the beauty and freshness

---

* *Rabindranath Tagore* by B. K. Roy (New York, 1915).

of his oriental thought into the accepted forms of western *belles-lettres*" इन निर्णायकों को प्रायः यह पता भी न था कि रवि बाबू की कृतियों की संख्या कितनी है ; क्योंकि तब तक तो एक-आध का ही अनुवाद हुआ था। बात यह हुई कि स्वीडन के एक प्राच्य-पुरातत्त्वज्ञ निर्णायक-समिति के सदस्य थे, और उन्होंने इनकी अधिकांश कविताएँ बँगला में पढ़ी थीं। मुख्यतः इन्हीं के कारण यह पुरस्कार ठाकुर महोदय को मिला भी है। पुरस्कार मिलने के पश्चात् अपनी कई पुरानी पुस्तकों के अनुवाद इन्होंने स्वयं किए हैं, और अपने जीवन-संस्मरण भी लिखे हैं। तब से तो इनके ग्रंथ धड़ाधड़ छपने लगे, और जितनी आय ग्रंथों से हुई है, सभी शांति-निकेतन की उन्नति में ही लगा दी गई है। दो ही वर्ष बाद, सन् १९१५ ई० में, इन्हें 'सर' की उपाधि मिली, पर थोड़े ही दिनों बाद. असहयोग के दिनों में, इन्होंने उसे लौटा दिया, और इसी सम्बन्ध में वाइसराय को एक लंबा-चौड़ा पत्र भी लिखा।

शांति-निकेतन की स्थापना १९०२ ई० में ही हो गई थी, और इसके लिये अपने पिता से रवि बाबू ने स्वीकृति भी ले ली थी। उन्हीं के शब्दों में इसका उद्देश्य यह था—"To revive the spirit of our ancient system of education .....to make the students feel that there is a higher and a nobler thing in life than practical efficiency !" इस स्थान पर अभी तक पूज्य महर्षि देवेंद्रनाथजी की स्मृति-शिला एक पुराने पेड़ के नीचे गड़ी है, जिस पर बँगला में लिखा है—

"तिनि
आमार प्राणेर आवास
मनेर आनंद
आमार भक्ति।"

लड़के यहाँ बड़े आनंद से जीवन व्यतीत करते हैं। कोई-कोई तो लौटकर घर जाना भी अस्वीकार कर देते हैं। संभवतः इस आश्रम के विषय में पाठकों को फिर कभी पृथक् लेख मिलेगा। तब तक यही कहना पर्याप्त होगा कि सारे भारतवर्ष में इने-गिने गुरुकुलों को छोड़कर महात्मा गांधी के साबरमती-आश्रम के बाद यही स्थान ऐसा है, जो प्राचीन आश्रमों की झलक दिखलाता है।

लोगों का ख़याल है कि पुरस्कार इन्हें "गीतांजलि"-नामक पुस्तक पर मिला है; पर बात यह है कि यह पुरस्कार किसी ग्रंथ-विशेष पर नहीं, लेखक की समग्र प्रतिभा पर ध्यान देते हुए उसके सारे साहित्यिक कार्य पर मिलता है। यह स्वाभाविक है कि उसके सर्वोत्तम ग्रंथ के कारण लोगों का ध्यान उसकी प्रतिभा की ओर आकर्षित हो। गीतांजलि है भी इनके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में से; पर इनकी सभी कृतियों में एक विशेष गुण यह है कि उनमें एक ओर तो संसार का और दूसरी ओर स्वर्ग का संपर्क मिलता है। गीतांजलि की ही एक-आध पंक्तियों को लीजिए। प्रारंभ में ही कवि की सरल विनयपूर्ण प्रार्थना सुनिये—

"आमार माथा नत करे दाओ हे
तोमार चरण-धूलार तले।
सकल अहंकार, आमार हे
डोबाओ चोखेर जले।"

अर्थात् अपनी चरण-धूलि के नीचे मेरा मस्तक नत कर दो, और मेरे चक्षुओं के अश्रु-सागर में मेरे अहंकाररूपी पर्वत को डुबो दो।

भला कौन ऐसा अभिमानी होगा, जो इन पंक्तियों को पढ़कर रोने न लगे? चाहे यह परमात्मा से कहा गया हो अथवा किसी

उपास्य देव किंवा प्रेमी-विशेष से, पर इसके अक्षर-अक्षर में करुणा है, विराग है, सहृदयता एवं सरलता है। एक स्थल पर कवि अपने उपास्य भगवान् से आँखमिचौनी खेलता है, और जब ढूँढकर थक जाता है, तो कहने लगता है—

एमन आँड़ाल दिए[1] लूकिए गेले[2] चलबे ना।

× × ×

जानि आमार कठिन हृदय,
चरण राखार योग्य से नय,
तबु सखा कि तोमार छावा लागले,
आमार प्राण कि गलबे ना[3] ?

प्रेमी कहता है—मैं जानता हूँ, मेरा कठोर हृदय तुम्हारे चरण-कमल रखने योग्य नहीं है; पर क्या तुम्हारे संपर्क से वह प्रस्तर द्रवीभूत न हो जायगा? यह भक्ति भी सखाभाव की है, जिसमें परमात्मा भक्त का भाई बन जाता है।

इनके सभी ग्रंथों में मुझे तो "दूज का चाँद"* सबसे अधिक भाता है। इसमें बाल्य-काल के सौंदर्य के साथ-साथ दार्शनिक तत्त्वों का समावेश मिलता है; और यद्यपि यह लिखा गया था बच्चों के लिये, तथापि वृद्ध-युवा सभी इससे आनंद उठा सकते हैं। इसका उर्दू तथा हिंदी, दोनों में अनुवाद हो चुका है। कभी छोटा बच्चा माँ से प्रश्न करता है, और कभी माँ बच्चे से। इसी प्रकार अनेक गूढ प्रश्न सुलझाए गए हैं। इसी प्रकार "डाक घर"† में भी

---

१. इस प्रकार छिपकर। २. ओट करने से। ३. मेरा प्राण क्या पिघल नहीं जायगा?

*Crescent Moon (सचित्र) (Macmillan & Co.), 1915.

† The Post Office (Macmillan & Co, Ltd.).

सरल ढंग से बड़े सत्य की विवेचना की गई है। एक छोटे छोकरे को यह सूझता है कि मेरे पास महाराजाधिराज की चिट्ठी आएगी। उसी की प्रतीक्षा में वह घुलते-घुलते मर जाता है—परमात्मा उसे अपने "डाकघर" द्वारा अपने पास बुला लेता है। बाल-साहित्य के इस विवेचन से रवि बाबू उसी विचार के जान पड़ते हैं, जिसके अनुसार, अँगरेज़ी के महाकवि वर्ड्स्वर्थ के शब्दों में, हम लोग बाल्य-काल में परमात्मा के निकट रहते हैं, और ज्यों-ज्यों बडे होते जाते है, त्यों-त्यो उससे दूर भागते जाते है—

"Trailing clouds of glory do we come,
From God who is our home * "

इसी प्रकार "चित्रा"-नामक नाटक में स्त्री के आध्यात्मिक तथा पार्थिव गुणों का, "संन्यास" में त्याग का तथा "अंध-कोठरी के राजा" (King of the Dark Chamber) में बौद्धधर्म का विवेचन है। "गोरा"-नामक उपन्यास तो दो वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुआ है, जिसमें अर्वाचीन भारत के एक आदर्श नवयुवक की आकांक्षाओं की पूर्ति का ख़ाका है। दो गद्यात्मक निबंधों—*Personality* एवं *Nationalism*—में उच्च कोटि के देश-प्रेम तथा आदर्श की सविस्तर व्याख्या है। इनके सभी ग्रंथों की संख्या कई दर्जन है, और बीस पोथियों में इनके संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

रवि बाबू का बाहर बहुत आदर है। आप कितने ही बार निमंत्रित होकर योरप जा चुके है। अभी-अभी लीग ऑफ नेशंस की ओर से एक महत्त्व-पूर्ण पुस्तक छप रही थी। इसमें संसार-भर के सभी बड़े-बड़े विद्वानों की सम्मतियाँ इस विषय पर रहेंगी कि

*Wordsworth : Ode on Othe Intimation of Immortality from childhood.

का तो इन्होंने स्वयं अँगरेज़ी में अनुवाद भी किया है, यद्यपि इस अनुवाद में कबीर के दर्शन से अधिक रवि बाबू का ही अपना आ गया है।

रवि बाबू देखने में भी बड़े सौम्यमूर्ति हैं। आप गाते बहुत अच्छा हैं, और दूर देशों में श्रोतागण प्रायः आपकी कविताओं को आपके ही श्रीमुख से सुनते है। मैंने इन्हे गाते भी सुना है, और यों भी वार्तालाप में इनका सौजन्य देखा है। एक ग्रंथ का अनुवाद करने के लिये मैंने इन्हे पत्र लिखा, तो तुरंत आपने आज्ञा दे दी। एक बार इन्हे रेशम-ही-रेशम पहने देखकर हम लोगों ने पूछा—आप खद्दर क्यों नहीं पहनते? क्या उसमें अधिक सादापन नहीं है? आपने धीरे से उत्तर दे दिया—"Simplicity is not a bundle of negatives, it is a harmonious synthesis of opposites"—अर्थात् सादगी 'न' कार का संग्रह मात्र नहीं, वैषम्य का एकीकरण है। आप महात्माजी के चर्खावाद अथवा असहयोग-वाद को नहीं मानते। जो कुछ हो, यह तो वैयक्तिक विचार हैं। रवि बाबू भारतमाता के भाल के सुललित टीका हैं। परमात्मा इन्हें दीर्घजीवी करे, जिससे इनके संपर्क से और कई रवि बाबुओं का देशाकाश में उदय हो।

रोमे रोलाँ

सन् १६१४ ई० में किसी कारण-वश पुरस्कार नहीं दिया जा सका। सब लोग बड़े उत्सुक हो रहे थे। सालभर और बीता और फिर रोमे रोलाँ का नाम प्रकाशित हुआ। यों तो इस पर किसी को कुछ आपत्ति न हो सकती थी, पर अभी तक रोलाँ प्रसिद्ध नहीं हो पाए थे, यद्यपि इनकी अवस्था ५० वर्ष की हो चुकी थी।

स्वभावतः यह शांत और गीता के "योगस्थः कुरु कर्माणि" वाले सिद्धांत के पक्षपाती है। इसीसे विज्ञापन अथवा प्रकाशन के लिये बहुत उत्सुक नहीं रहते।

रोलाँ का जन्म फ्रांस के एक छोटे-से गाँव, क्लेमेसी में, २६ जनवरी, सन् १८६६ ई० को हुआ था। पिता इनके वकालत के काम में थे, और माता एक मजिस्ट्रेट की कन्या थीं। वह प्रकृति से ही संगीत-प्रिय एवं धार्मिक थीं। बालक रोमे को भी संगीत से प्रेम हो गया। बस, पुत्र और माता का साथ गाने-बजाने में रहता, और पिता अपनी दूसरी धुन में मस्त रहते। पर यह नहीं कि उन्हें बालक की शिक्षा-दीक्षा से उदासीनता रही हो। उन्होंने तो अपनी वकालत छोड़कर पेरिस में क्लर्की इसीलिये कर ली, जिससे लड़का अच्छे-से-अच्छे स्थान में पढ़े। बीस वर्ष की अवस्था में यह Ecole Normale में प्रविष्ट हुए, और वहीं यह कई बड़े-बड़े पंडितों से मिले। इतिहास से इन्हें विशेष रुचि थी, और प्रारंभ से ही यह टालस्टॉय तथा शेक्सपियर के ग्रंथों का अध्ययन करने लग गए थे। इन दोनों महापुरुषों पर आगे चलकर इन्होंने पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें से महात्मा टालस्टॉय वाला ग्रंथ * बहुत प्रसिद्ध है। विद्यार्थी-जीवन में ही इन्होंने एक ऐसी पुस्तक लिखने की ठान ली थी, जिसमें "the history of a single-handed artist who bruises himself against the rocks of life"—यह विषय हो। बस, इसी विचार के फलस्वरूप उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ—Jean Christophe—कई वर्ष पश्चात् तैयार हुआ †।

---

* *Tolstoy*, translated by B. Miall (London and New York, 1911)

† *Jean-Christophe*, 3 Volumes (London and New York, 1910, 1916).

नार्मल स्कूल (Ecole Normale) से ही इन्हें रोम जाकर इतिहास का विशेष अध्ययन करने के लिये छात्र-वृत्ति मिल गई, और यह दो वर्ष तक इटली में रहे। यहाँ एक इटलियन महिला मेसनबर्ग से इनकी मैत्री हो गई, जिनका इनके जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा, जैसा कि इन्होंने एक निबंध में स्पष्ट कहा है। सचमुच इनकी माता तथा इस विदुषी महिला, दोनों की ही रोलाँ के जीवन पर अमिट छाप लगी है। मेसनबर्ग लेखिका तो थी हीं, गान-विद्या में भी निपुण थीं, और उनकी बड़े बड़े विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों से मित्रता थी। इनके सत्संग से रोलाँ को ललित-कलाओं में और भी अगाढ़ रुचि हो गई। यहाँ रहकर उन्होंने एक-आध नाटक भी लिखे, जिनमें अधिकतर पौराणिक एवं धार्मिक इतिहास के रहस्य निहित थे। इनमें नियोबी (Niobe) और कैलीगुला (Caligula) प्रसिद्ध है। लौटकर यह उसी नार्मल स्कूल में अध्यापक हो गए, जहाँ यह स्वयं पढ़ते थे। इसी बीच में भाषा-विज्ञान के आचार्य ब्रील की कन्या से इनका विवाह हो गया। यह महिला भी बड़ी सहृदय तथा कलात्मक रुचि की निकलीं। अपने ससुर के घर पर ही रोलाँ को देश-भर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध धुरंधर विद्वानों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्ट्रैसबर्ग तथा बॉन में संगीत की प्रदर्शिनी देखने के बाद इनके हृदय में विशेष उत्साह हुआ और यह योरप के प्रकांड संगीतज्ञों के ऊपर एक ग्रंथमाला ही प्रकाशित करने लगे। इस माला में बीथोवेन तथा हैंडेल (Beethoven and Handel) के ऊपर पृथक् ग्रंथ हैं।

रोलाँ पहले से ही राजनीतिक एवं साहित्यिक पद्धति के विरोधी थे। कहा भी है—

"राह छाँड़ि तीनौं चलै, सायर[1], सिंह, सपूत।"

---

१. शायर=कवि।

इसी विरोध-भाव से प्रेरित होकर इन्होंने कई नाटक ऐसे लिख डाले, जिन्हें पढ़-पढ़कर लोग—और विशेषतः पुरानी चाल के लोग—थर्राने लगे। इनमें मुख्य हैं "डैंटन" (Danton) और "बुद्धि की विजय" (Triumph of Reason)। "सेंट लुई" तथा 'चौदहवीं जुलाई''-नामक दो और ऐतहासिक महत्व के नाटक लिखे, जो इसी धुन से भरे थे। कलाओं के पृष्ठपोषक होते हुए आपने नाटकों के लिये बड़ा आंदोलन करना प्रारंभ किया। इसी बीच में जेनरल ड्रेफ़स का अभियोग चल पड़ा, जिसमें फ़्रांस-देश को ही धोखा देने के अपराध में उन्हें आजीवन कारागार का दंड मिला। इस मामले का रोलाँ की चित्तवृत्तियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा, यहाँ तक कि इसी समस्या के आधार पर आपने "भेड़िए" (Les Loups) नामक * एक नाटक काल्पनिक नाम से लिख डाला। तदनंतर वह प्राचीन कलाविदों तथा संगीतज्ञों के जीवन-चरित्र लिखने लगे, और तभी से इनके महत्त्व पूर्ण ग्रंथ—'जीन क्रिस्ताफ़'—के एक-आध अध्याय छपने भी लगे। ये पहले एक साधारण पत्रिका में प्रकाशित हुए, जिसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया। आप स्वयं उस समय कुछ विरक्त-से होकर पेरिस के एक कोने में रहा करते थे। अकेले ही पढ़ना-लिखना, घूमना और कभी-कभी मनोविनोद के लिये पियानो बजा लेना, यही इनकी दिनचर्या थी।

धीरे-धीरे इनके ग्रंथ का महत्त्व सर्वसाधारण को विदित होने लगा। पहले-पहल जर्मनी के कुछ समालोचकों ने इसकी ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित कराया, और दूसरों ने इनके पूर्व-लिखित ग्रंथों का परिचय कराया। तभी से इनका गौरव-

---

* Translated by Barret H. Clark (1917)

काल आरंभ हुआ। पहले यह, १९१३ ई० में, फ्रेंच-एकेडेमी (French Academy) के सर्वमान्य सदस्य (Grand Prix) बनाए गए। बस, फिर क्या था, जीन क्रिस्ताफ़ का अनुवाद * भी अँगरेज़ी में हो गया, और लोगों की आँखें खुल गईं। फिर तो इनके पुराने ग्रंथों का पुनर्प्रकाशन होने लगा, और भेड़िए-नाटक का अभिनय भी हुआ, तथा अँगरेज़ी में अनुवाद भी।

इसी एक वर्ष के भीतर ही बाइरन की भाँति रोलाँ भी प्रसिद्ध हो गए। पुरस्कार मिलने के पश्चात् धड़ाधड़ इनके ग्रंथों के अनुवाद बिकने लगे। 'कोलास ब्रिग्नन' (Colas Breugnon) १९१३ के ग्रीष्म में प्रारंभ हुआ था, और इसका अनुवाद† सन् १९१९ ई० में, प्रकाशित हुआ। इसी बीच में महायुद्ध छिड़ गया। जिस प्रकार अपनी अमेरिका-यात्रा में रवींद्रनाथ ने एंड्रयूज़ को पत्रों में किसी भावी भीषण दुर्घटना की आशंका का निर्देश किया था, उसी भाँति रोलाँ को भी इस महायुद्ध की कालिमामयी छाया एक साल नहीं, और पहले ही दिखलाई पड़ी थी। जीन क्रिस्ताफ़ में भी इसका भविष्यवाद-सा है, और योरप-भर को चेतावनी दी गई है। सच तो यह है कि बाल्यावस्था से ही रोलाँ को युद्ध का भयावह चित्र बड़ा व्यग्र कर रहा था। अस्तु, जब लड़ाई छिड़ी, तो यह जेनेवा-झील के किनारे गरमी बिता रहे थे। वहाँ से यह टस-से-मस न हुए। और, यद्यपि मातृभूमि की सेवा करना चाहते थे, तथापि वह दृश्य इतना भयानक था कि जैसा उनके जीवन-चरित्र में लिखा है—

---

* By Gilbert Cannan.

† By Katherine Miller

"It had been a nightmare to him ; it had poisoned his childhood days."

उन्होंने रेड क्रॉस सोसाइटी में मंत्रित्व का भार अलबत्ता लिया, और जब पुरस्कार का रुपया मिला, तो योरोप के दुःख-निवारणार्थ सब-का-सब दान में दे दिया (To the mitigation of the miseries of Europe) *। इसी विषय में १९१२ के नोबेल-पुरस्कार-प्राप्त प्रसिद्ध जर्मन साहित्यिक हातमाँ को आपने एक महत्त्व-पूर्ण पत्र लिखा, जिसमें उनके देश से शांति के लिये अपील की गई थी। इसी प्रकार अमेरिका के प्रेसीडेंट विल्सन को भी इन्होंने देशों की पंचायत कराने के लिये लिखा था। महायुद्ध-संबंधी इनका कार्य बहुत श्लाघ्य है, और इस विषय के उनके सभी लेख एक अलग पुस्तक में प्रकाशित हैं †।

इन्हीं दिनों आपने एक नाटक—The Montespan—लिखा, जिसका विषय शांति है ‡।

लड़ाई के इन दिनों में इनकी चित्तवृत्ति बड़ी व्यग्रतापूर्ण हो गई थी, इसीलिये सत्य एवं शांति की खोज में इन्होंने महात्मा गाँधी के जीवन तथा कार्य का अध्ययन किया, और उसी का फल यह हुआ कि उन पर एक पुस्तक ही लिख डाली §। दूसरी पुस्तक

---

* *Romain Rolland, The Man and His Work*, by Stefan Zweig (New York, 1921).

† *Above the Battle*, translated by C. K. Ogden (Chicago, 1916).

‡ Translated by Helena Brugh de Kay.

§ *Mahatma Gandhi the Man Who Became One with the Universal Being*, translated by C. D. Groth (1924).

इसी अशांत भावना के फल-स्वरूप एक आह्लाद-पूर्ण नाटक के रूप में प्रकट हुई, जिसका नाम है "लिलूली" (Liluli)*। इसमें सुखांत घटना के अतिरिक्त फ्रांस का ही चित्र खींचा गया है, और उसके घमंड की हँसी उड़ाई गई है। सभी पुस्तकों में रोलाँ ने स्वयं अपने विचारों तथा भावों का प्रतिबिंब खींच डाला है। इसी प्रकार एक दूसरी पुस्तक में, जिसका नाम Clerambault ; the Story of Independent Spirit during the War है, आपने अपनी ही शांति-पूर्ण प्रकृति का चित्रण किया है। इसमें जीवन और उसके घोर संग्रामों के विषय में रोलाँ ने अपने सिद्धांतों का अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

जीन क्रिस्ताफ़ के बाद इनका दूसरा महत्त्वशाली ग्रंथ १९२२ ई० में निकला, जिसका फ्रेंच-नाम है L'ame Enchantee, अर्थात् मंत्राभिभूत आत्मा। यह संपूर्ण ग्रंथ का केवल प्रथम भाग है, और इसमें सत्यान्वेषण के साथ-साथ जीवन के आनंद एवं दुःख के दृश्य दिखलाए गए हैं। इसका अनुवाद है Annette and Sylvie †। दो लड़कियाँ एक ही पिता, पर दो माताओं से पैदा हुई हैं। एनेटी बहुत सुशील तथा पढ़ी लिखी है, पर उसे यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि मेरे पिता ने एक दूसरी स्त्री भी रक्खी थी, जिससे सिल्वी का जन्म हुआ है। सिल्वी अपढ़ एवं दुश्चरित्र है, पर दोनों बहनें अंत में विवाह के उपरान्त अपने अनुभवों द्वारा शिक्षा प्राप्त करती हैं। बीच-बीच में प्रेम तथा पश्चात्ताप के कारण कई स्थल टेढ़े-मेढ़े आ जाते हैं, जिन्हें लेखक ने बड़े कौशल से निबाहा है।

---

* *Liluli*, with wood-engravings, by F. Masereel (1920).

† Annette and Sylvie, translated by B R. Redman (1925).

इन सभी ग्रंथों में रोलाँ ने मानव-हृदय तथा मस्तिष्क के विभिन्न विकारों की लीला दिखाई है, और अधिकांश में तो अपना ही चरित्र-चित्रण किया है। कहीं-कहीं अपनी स्पष्ट जीवनी ही लिख दी है। इस सर्वोच्च ग्रंथ Jean Christophe में तो .फ्रांस अथवा अपने ही लिये नहीं, बल्कि सारे योरप के लिये उपदेश दिया गया है। जर्मन कवि गेटे ने कहा था—"National literature now means very little ; the epoch of world literature is at hand." इन शब्दों को पढ़कर रोलाँ ने कहा—"Let us make Goethe's prophecy a living reality." इसीलिये इस ग्रंथ के नायक में स्वयं लेखक की भाँति संगीत आदि की रुचि तो है हो, पर साथ ही-साथ प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी के योरपीय देशों की सामाजिक दशा का भी विशद् वर्णन है। नायक के दुःख-पूर्ण अनुभव प्रसिद्ध संगीतज्ञ बीथोवन, वैगनर एवं ह्यूगो उल्फ के ही अनुभव है अवश्य, पर अन्यान्य अनेक विषय भी इसमें मिला दिए गए हैं। लगभग १,६०० पृष्ठों की इस पोथी में कितनी ही कोटियों के पात्र हैं। इसके पूर्व-भाग १८९५ से १८९७ तक, कुछ तो .फ्रांस और जर्मनी में, कुछ स्वीज़रलैंड तथा इटली में और कुछ इँगलैंड में लिखे गए थे। सारी पुस्तक जाकर १९१२ में समाप्त हुई। नायक बेचारा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये देश-विदेश में मारा-मारा फिरता है। बीच-बीच में सभी देशों को लेखक फटकार बताता है, विशेषकर जर्मनी तथा .फ्रांस को। एक-आध समालोचकों ने रोलाँ से कहा भी कि आप जर्मनी को वैर-भाव से देखते हैं। इस पर उन्होंने अपने ग्रंथ के वे स्थल बतलाए, जहाँ पर .फ्रांस को भी उन्होंने डाँटा था—और बुरी तरह से डाँटा था। अंत में उन्होने यह सिद्ध किया है कि यदि योरप के देशों में परस्पर एक दूसरों के गुणों का परिचय होकर मैत्रीभाव न

होगा, तो युद्ध अवश्यंभावी है। दो ही वर्ष पश्चात् यह भविष्य-वाणी सत्य हुई, और तब जाकर उनके ग्रंथ का महत्त्व और अधिक समझा जाने लगा।

इसके अनुवादक गिलबर्ट कैनन ने तो अपनी भूमिका में इस पुस्तक को "The first great book of the twentieth century" बतलाया है। सचमुच इस ग्रंथ का महत्त्व इसके औपन्यासिक चित्रण में नहीं, इसके सत्यता-पूर्ण विवेचन में, इसके भविष्यवाद और इसकी चेतावनी में है, जो सारे योरप को दी गई है। जिस प्रकार नायक को अनेक कठिनाइयों के बाद अंत में सफलता मिलती है, उसी प्रकार रोलाँ को स्वयं अपने जीवन में भी ऐसे ही अनुभव प्राप्त हुए हैं। नायक तो क्या, स्वयं योरप अपनी भावी संतानों से कह रहा है—

"You, men of to-day, march over us, trample us under your feet, and press forward. Be ye greater and happier than we .. ..Life is a succession of deaths and resurrections. We must die, Christophe, to be born again."*

इन्हीं शब्दों के लिये और ऐसे ही तथ्य-पूर्ण संदेशों के लिये रोलाँ लेखक ही नहीं, दार्शनिक तथा भविष्यद्रष्टा, साहित्यिक ही नहीं, वरन् अंतर-राष्ट्रीय कल्याण के विधायक तथा विश्वव्यापी शांति के पृष्ठपोषक एवं उद्धारक समझे जायँगे—और सदा के लिये अमर रहेंगे।†

* *Jean Christophe*, page 348 (New York, 1913).

† पता लगा है कि रोलाँ महोदय शीघ्र ही एक महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ स्वामी विवेकानंद तथा रामकृष्ण परमहंस के सिद्धांतों पर प्रकाशित कराने वाले हैं। आशा है, महात्माजी वाले ग्रंथ की भाँति यह भी क्रांतिकारी सिद्ध होगा। आजकल इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और ये परिवार-सहित स्वीज़र लैण्ड की जिनेवा झील के किनारे एक गाँव में रहते हैं।

अध्याय ५

योरप के कुछ उपन्यासकार

हीडन्स्टाम

सन् १९१६ का पुरस्कार स्वीडन के प्रसिद्ध कवि हीडन्स्टाम को मिला। बहुत दिनों से यह स्वीडन के लॉरिएट (राजकवि) कहलाते थे। यों तो सेलमा लेजरलॉफ़ की अपेक्षा यह कम प्रसिद्ध थे, पर पुरस्कार के पूर्व इनका नाम इतना हो गया था कि साधारण जनता ने वोट द्वारा यह निश्चित कर दिया था कि देश के सर्व-प्रिय कवि यही हैं। दूसरी बात यह थी कि स्वीडन के साहित्य में इन्होंने एक नया युग उपस्थित कर दिया है। इनका जन्म जुलाई, १८५९ ई० में, एक प्रसिद्ध घराने में, हुआ था। लड़कपन में यह बड़े दुबले-पतले और लजीले थे। कुछ दिनों तक तो यह संदेह हुआ कि लड़के को कहीं यक्ष्मा की बीमारी न हो, इसीसे कई वर्ष तक यह इटली, स्वीज़रलैंड, यूनान, तुर्किस्तान तथा मिसर में घूमते रहे। पूर्वी देशों में इनके एकआध संबंधी नौकर भी थे, इसी से उधर और भी इन्हें अच्छा लगा, और आठ वर्ष तक पर्यटन करते रहे।

लौटने पर कुछ दिनों पेरिस में प्रसिद्ध चित्रकार जेरोम के साथ यह चित्रकारी सीखते रहे। इनकी हार्दिक इच्छा थी कि इसी कला को अपना ध्येय बना लें; पर बीच में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिनसे इन्होने साहित्य में ही कार्य करना निश्चित किया। स्वीज़र-लैंड में इनको एक साधारण स्विस लड़की से प्रेम हो गया, और अंत में उसी से इनका विवाह हुआ। वहीं एक स्थान पर रहने भी लगे, और कविताएँ लिखना भी प्रारंभ कर दिया। आठ वर्ष तक घर से बाहर रहते-रहते जी ऊब गया था। अस्तु, इसी संबंध की एकआध पंक्तियाँ यों लिखीं—

" I've longed for home these eight long years,
I know.
I long in sleep as well as through the day !
I long for home !
I seek wherever I go, not men-folk, but the fields
Where would stray,
The stones where as a child I used to play. " *

अपनी माता से इन्हें विशेष प्रेम था। उनके ऊपर एक छोटी-सी कविता भी की है, जिसका नाम है " Mother." इसमें माता के विषय में लिखते हैं—

" She prayed my life might have a worthy goal. "

परंतु अंत में यह कुछ जीवन से खिन्न हो गए थे। " यश " (Fame)-नामक कविता में इन्होंने लिखा है—

" You seek for fame, but I would choose another
And a greater blessing :
So to be forgotten
That none should hear my name,
No, not even my mother."

इन पंक्तियों में तो पोप की उस कविता से भी अधिक विरक्ति है, जिसमें वह लिखते है—

" Thus let me live, unseen, unknown,
Thus unlamented let me die ;
Steal from the world, and not a stone
Tell where I lie."

**Selected Poems*, translated by C. W. Stork (New Haven), 1919.

ऐसा जान पड़ता है कि मातृभूमि से दूर रहते हुए इन दिनों इन्हें पुराने मित्र आदि स्वीडन के लोग स्मरण नहीं करते थे, और मारे क्रोध के इन्हें वैराग्य-सा हो रहा था।

इधर १८८७ में इनके पिता का देहांत हो गया, और बाध्य होकर इन्हें घर लौटना पड़ा। पुरानी भावनाएँ जाग्रत हो उठीं, और इन्होने एक कविता "स्वीडन"-शीर्षक लिखी, जो देश भर में बहुत प्रचलित है। यह जार्नसन के "Song of Norway" अथवा मेसफील्ड के "August, 1914" के सदृश उत्साह-पूर्ण भावो से भरपूर है। एक आध पंक्तियाँ इसकी यों हैं—

"Oh, Sweden, Sweden, Sweden,
Native Land!
Our earthly home, the haven of
Our longing!
The cow-bells ring where heroes used to stand,
Whose deeds are song, but still with hand in hand,
To swear the eternal troth thy sons are
thronging!"

इस प्रकार स्वीडन की प्राचीन पद्धति की कविता में, जो हमारी व्रजभाषा की भाँति थी, हीडनूस्टाम ने नवीन जीवन डाल दिया। "Fellow-Citizens"-नामक एक ऐसी ही और कविता है। जार्नसन के ऊपर, उनकी मृत्यु के पश्चात्, इन्होंने एक लंबी कविता लिखी है, जिसका नाम है "Norway's Father" इसमें भी वही स्वदेश-प्रेम के भाव हैं। इसकी अंतिम पंक्तियाँ ये हैं—

"Yet the soul of the people deep within
Still breathes the eternal brother song,

We stand and gaze at the sunset long
And grieve for thee as one of our kin."

सन् १८९८ ई० में इन्होने एक उपन्यास लिखा, जो कीट्स के प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ " Endymion " के ही विषय पर था, और उसका नाम भी यही रक्खा। दूसरे ग्रंथ Pepita's Wedding में अपने सच्चे आदर्शवाद की विवेचना की, और दो वर्ष बाद, सन् १८९२ में Hans Alienas-नामक कहानी में कल्पना तथा सत्य का अच्छा सम्मिश्रण दिखलाया।

पर इन छोटे ग्रंथो में इनका महत्त्व नहीं है। वीरता के कथानक तो इनकी दूसरी पुस्तक में मिलते हैं, जिसका नाम है "Karolinern"। इसमें चार्ल्स और उसके युद्धों का सविस्तर वर्णन है *। यद्यपि रोलाँ की भाँति हीडनस्टाम भी शांति-प्रिय हैं, पर लेखनी इनकी अग्निमयी है।

इनकी पहली और दूसरी पत्नी का देहांत हो गया था। सन् १९०० में इन्होंने तीसरा विवाह किया। तभी से अपने गाँव के पास एक नया मकान लेकर वहीं रहते हैं। यद्यपि इनके ग्रंथों के अनुवाद कम हुए हैं, तथापि अपने देश में इनका बड़ा प्रभाव है, और स्वीडिश एकेडेमी के यह बहुत दिनों से सदस्य हैं। पुरस्कार मिलने पर शिक्षा-विभाग ने इनसे पाठशालाओं के लिये एक पुस्तक लिखने को कहा। नवयुवकों के लिये इस पुस्तक में आपने वीरता की गल्पें बड़ी खूबी के साथ रक्खी हैं। बड़े विद्यार्थियों के लिये इन्होंने दो और नाटक लिखे हैं—The Soothsayer और The Birth of God †। इन दोनों ही पुस्तकों में आध्यात्मिक

* The Charles Men (Scandinavian Classics, New York, 1920).

† Translated by K. M. Knudsen (Boston, 1920).

भाव हैं। पहली का मूल-तत्त्व लेखक ने स्वयं अपोलो के शब्दों में यों कहलाया है—

"Son of dust!
Thou didst try to serve two gods;
Therefore, thy power became thy doom!"

ये दोनों देवता आध्यात्मिकता तथा भौतिकता हैं, जिनके कारण शक्ति ही नाश का कारण हो जाती है इसीलिये तो अपने यहाँ भी भगवान् रुद्र, जो विनाश के अधिष्ठाता हैं, शक्ति (दुर्गा अथवा काली) के साथ-साथ पति-स्वरूप रक्खे गए हैं। "परमात्मा का जन्म" में, मिसर-देश के पौराणिक कथानकों के आधार पर, आधुनिक जीवन का विश्लेषण किया गया है।

इनका अंतिम ग्रंथ The Tree of the Folkungs इतिहास, उपाख्यान तथा कर्मण्यता का सजीव एकीकरण है। इसमें भूत एवं वर्तमान का अच्छा सम्मिलन है। इसके नायक बर्बर-देवों के उपासक हैं, पर विभूति के दूषित दिनों में सभी मंदिरों को उजाड़ते और दुर्दिनों में फिर उपासना करते हैं। विरोधी वंश से पराजित होने पर उसके पुत्र-पौत्र सभी उससे घृणा करने लगते हैं। फिर विजयी वंश की बारी आती है, और उसमें भी दो भाइयों की लड़ाई होती है। इन सब शक्तिशाली वर्णनों से ही अपने देश के साहित्य में इन्होंने नया जोश डाल दिया है, जिसके कारण इनका स्थान वहाँ के साहित्यिकों में निराला समझा जाता है।

हेनरिक पांटोपिदन

सन् १९१७ का पुरस्कार दो विद्वानों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया, जो दोनों ही डेनमार्क के थे। इस वर्ष का पुरस्कार-

वितरण बड़े ही आश्चर्य का कारण रहा ; क्योंकि पहले तो बहुत कम लोग समझते थे कि इस वर्ष यह डेनमार्क में जायगा, फिर उस देश के संपादक एवं समालोचक यह स्वप्न में भी नहीं सोचते थे कि पुरस्कार इन दोनो सज्जनो को दिया जायगा। कारण, डेनमार्क में जॉर्ज ब्रैंडीज़-जैसे धुरंधर विद्वानो के होते हुए दूसरों को मिलना असंभव-सा था। दूसरी बात यह थी कि डेनिश-लेखकों की कृतियों के अनुवाद भी बहुत कम हुए थे, जिससे उनकी ख्याति बहुत ही संकुचित थी।

जो कुछ हो, इन दोनों में से एक तो थे हेनरिक पांटोपिदन (Henrik Pontoppidan) जिनके एक उपन्यास को वर्गस्ट्रॉम ने नाटकीय रूप दिया था। इस ग्रंथ का नाम है Thora Van Deken, जो १९१५ ई० में प्रकाशित हुआ, और जिसका उल्लेख A Study of the Modern Drama* में विस्तृत रूप से है। इन बूढ़े लेखकों में दोनों की अवस्था ६० से ऊपर थी और पांटोपिदन का नाम अधिक था। इनके वश में विद्वान भी हुए थे। एंडर्सन ने तो यहाँ तक लिखा था कि "Modern Denmark could be re-constructed entire from his books"। पांटोपिदन के पिता-पितामह पादरी थे, और उनका जन्म १८५७ ई० में हुआ था। वह पहले इंजीनियरी पढ़ने के लिए कोपेनहेगेन भेजे गए। फिर स्वीज़रलैंड गए, और वहीं प्रेम और काव्य, दोनों का ही पाठ पढ़ा। २४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने Clipped Wings (कटे पर) नामक गल्पों का एक संग्रह प्रकाशित किया। पहली पत्नी के देहांत हो जाने पर दूसरा विवाह करके यह राजधानी में ही रहते हैं। ब्रैंडीज़ इनके मित्रों में से हैं, और अनेक नौसिखिए नाट्यकार इनकी

---

* By B. H. Clark (New York, 1925).

शिष्यता में हैं। १८९२ से १९१६ ई० तक इन्होंने तीन बड़े-बड़े उपन्यास लिखे हैं, जिनमें से पहला है The Promised Land जिसके लिखने में तीन वर्ष लगे थे। इसमें एक आदर्शवादी की उन कठिनाइयों का निवारण है, जो आदर्शानुयायियों को प्रायः संसार में झेलनी पड़ती हैं। दूसरा है Lineky Peter, जिसके लिखने में चार वर्ष लगे, और जिसमें लेखक ने थोड़ा-बहुत अपना ही जीवन चित्रित किया है। इसका नायक भी पादरी का लड़का है, और इंजीनियरी पढ़ता है। इनका तीसरा उपन्यास है The Kingdom of the Dead, जिसमें डेन्मार्क के और विशेषतः कोपेनहेगेन के जीवन का प्रतिबिंब है। एक और मनोरंजक उपन्यास है "पंसारी की लड़की" * जो इन तीनों के पहले लिखा गया था।

इनके ग्रंथों तथा कहानियों का महत्व, जैसा कि पुरस्कार के निर्णायकों ने लिखा था; चरित्र-चित्रण अथवा मानसिक अध्ययन में नहीं, वरन् उनके " Profuse description of the Danish life of to-day " में है, और इसके जानने के लिए वहाँ के किसानों की दशा जान लेनी चाहिए। बात यह है कि १८९० ई० में एक ऐक्ट पास हुआ था, जिसके अनुसार वहाँ के किसानों की अवस्था बहुत उत्तम हो गई। कितनी ही सभा-सोसाइटियाँ बनीं, और पाठशालाएँ आदि स्थापित हुईं। १८९९ ई० में, इस ऐक्ट में, फिर परिवर्तन हुआ, जिससे उन बेचारों की दशा खराब हो गई। इस पर इन्होंने दो और ग्रंथ लिखे, एक तो था The Evolution of the Danish Peasant और दूसरा Children of the Soil.†

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने कितनी ही छोटी-छोटी गल्पें

---

* The Apothecary's Daughter, translated by G. Nielsen (London, 1890).

† Translated by Mrs. Edgar Lucas (London, 1896)

लिखी हैं। जिनमें इनकी वर्णन-शैली का अधिक घनिष्ठ परिचय मिलता है। "छुई-मुई" तथा "उक़ाब की उड़ान" आदि कहानियाँ इसके उत्तम उदाहरण है।

कार्ल जेलेरप

पांटोपिदन के साथी जेलेरप (Gjellerup) भी पादरी घराने के थे, और उसी वर्ष पैदा हुए थे। दोनों जनों की अवस्था बराबर थी। इनकी प्रारंभिक पढ़ाई पडिताई तथा मंत्रित्व के लिए हुई; पर इन्हें इनमें से एक भी पसंद नहीं आया। इन्हें तो डार्विन, स्पेंसर तथा ब्रैंडीज़ के सिद्धांतों से प्रेम था। अतएव ऐसे ही ग्रंथों का अध्ययन यह पहले से ही करने लगे। बहुत दिनों तक यह जर्मनी में रहे, जहाँ इनका बहुत अधिक नाम है।

इनके ग्रंथों में प्राचीन ईसाई-धर्म के प्रतिपादन के साथ-साथ यूनान के सौंदर्य-प्रेम का भी रहस्य मिश्रित है। अंगरेज़ी में इनका अनूदित सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है "यात्री कामानीत" जिसकी कथा भारतीय साहित्य से कुछ संबंध रखती है *। इसका मूल स्थान गंगा-तट पर "पंच पर्वत की नगरी" है, जहाँ बुद्ध भगवान् आकर कामानीत से मिलते हैं। कामानीत अवंती के एक व्यापारी का लड़का है, और सर्वगुण-संपन्न नवयुवक होते हुए भी राजनीतिक दूतत्व के लिए कौशांबी के राजा उदयन के यहाँ भेजा जाता है। वहीं यह कुमारी के प्रेम में फँस जाता है। दूसरा उपन्यास "मिन्ना" नायिका की दुःख-पूर्ण गाथा है †। इसका घटना-स्थल जर्मनी में है, जहाँ स्वयं लेखक बहुत दिनों तक रह चुका है।

---

* The Pilgrim Kamanita, translated by J. E. Logie.

† Minna, a novel, translated by C. L. Neilson (London, 1913).

जर्मन समाज तथा साहित्य से जेलेरप को प्रेम भी बहुत था। उन्होंने इस देश के दर्शन तथा जीवन के रहस्यों को अन्यदेशीय विद्वानो को समझाने की बड़ी कोशिश भी की है। इसी कारण डेन्मार्क में प्रायः लोग उन्हें उच्च कोटि के डेनिश लेखकों की श्रेणी में नहीं गिनते। ऐसे ही लोगों की सम्मति थी कि नोबेल-पुरस्कार इनको नहीं, बल्कि संसार-प्रख्यात जार्ज ब्रैंडीज़ को या नाट्यकार बर्गस्टाम अथवा कविवर ड्रेकमैन को मिलना चाहिए था। जो कुछ हो, पर जेलेरप के ग्रंथों में प्रतिभा की झलक और विश्लेषण-शक्ति है, और आशा है कि अनुवाद होने से उनका मान साहित्यिक संसार में और भी बढ़ जायगा। इनका देहांत १३ आक्टोबर १९१९ ई० को हो गया, और तब से इनके विषय की उतनी चर्चा भी पत्रों में नहीं रहती।

कार्ल स्पिटलर

सन् १९१८ में भी १९१४ की भाँति पुरस्कार नहीं दिया जा सका। कुछ तो महायुद्ध के कारण और बहुत कुछ अन्यान्य कारणों से। अतएव १९१९ में जब पुरस्कार स्वीज़रलैंड के स्पिटलर को मिला, तो लोगों को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ; क्योंकि कार्ल स्पिटलर (Carl Spittler) का नाम फ्रांस तथा जर्मनी के अतिरिक्त और किसी देश में भी नहीं था। समालोचकों ने इन्हें बहुत निराश किया था और यद्यपि प्रकांड पंडित निट्शे (Nietzsche) ने इनके विषय में ये शब्द लिखे थे—"Perhaps the most subtle aesthetic writer"*, तथापि अंतर-राष्ट्रीय दृष्टि से इन्हें कोई नहीं जानता था। पुरस्कार मिलने के समय

* Carl Spittler : A Monograph, compiled by E. D. Verlag (Jena).

इनकी अवस्था लगभग ७५ वर्ष की थी, और जिस पुस्तक के लिए इन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ, उसके लिखने में इन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा था। निर्णायकों ने अपनी सम्मति देते समय इस ग्रंथ का विशेष उल्लेख किया है। वे लिखते हैं—"Having especially in mind his mighty epic *Olympisothen Fruhling*" अतएव यह ग्रंथ सर्व-सम्मति से एक शक्तिशाली महाकाव्य माना गया है। और, एक पत्र में राबर्टसन ने इटली के वाल्मीकि महाकवि दांते के Comedia Divina से तुलना करते हुए इसे कहा है—"The Divine Comedy of the New Century" *। किसी ने इसकी समता शेली के Prometheus Unbound से और दूसरों ने कीट्स के Endymion से की है।

ग्रंथ के नाम का अर्थ है "ग्रालिंपस में वसंत"। कथा यों है—रावण की भाँति विश्वविजयी अलंके (Alanke) देवताओं को पाताल में कैद कर देता है, और मुहम्मद तुग़लक की तरह उन्हे दूर-दूर देशों में घसीटता है। इसी बीच में उसकी लड़की मोयरा (Moira) संसार को शांति प्रदान करती है, और चारों ओर वसंत छा जाता है। परंतु थोड़े दिन पश्चात् फिर लड़ाई होती है, और दूसरे भाग में महारानी हीरा (Hira), जो अमेज़नो की रानी है, सब को नाच नचाती है। कथा बड़ी मनोहर तथा प्राचीनता एवं आधुनिकता का मिश्रण है। सारे ग्रंथ में बड़े-बड़े महत्वपूर्ण कई स्थल हैं, जहाँ लेखक की अपूर्व मनोमोहिनी प्रतिभा का परिचय मिलता है। कहीं-कहीं मनोविनोद तथा आदर्शवाद के साथ-साथ अर्वाचीन समस्याओं की भी छटा दिखाई गई है, जिससे कथा में केवल पुरानापन ही नहीं रह गया है, बीसवीं शताब्दी की स्पष्ट छाप लग गई है।

---

* Contemporary Review, January, 1920.

स्पिटलर का जन्म सन् १८४५ ई० में हुआ था। इनके पिता बेसल के डाकघर में नौकर थे। वहीं के विश्वविद्यालय में यह पढ़ते रहे, और वहाँ के दो बड़े विद्वानों का उनके जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। एक तो जर्मन भाषातत्वज्ञ वैकरनेजल और दूसरे इटालियन बर्कहर्ट थे। यहीं पर इन्हें संगीत से भी प्रेम हो गया, और कलाकौशल से भी रुचि होने लगी। फिर ज़ूरिच तथा हीडलबर्ग विश्वविद्यालयों में इतिहास तथा धर्मशास्त्र पढ़ने गए। यह सब पढ़ते तो रहे, पर प्रवृत्ति इनकी सदा ही साहित्य तथा काव्य की ओर रही। उसी समय से अपने जीवन का लक्ष्य इन्होंने कवि होना ही बना लिया। कई पुस्तकों का ख़ाका लिखने के लिए तैयार कर लिया; पर, फिर बीच में ही रूस के एक जेनरल के घर अध्यापक होकर चले गए। इस प्रकार रूस में आठ वर्ष रहे, और वहीं एक लंबी कविता धीरे-धीरे लिखते रहे, जिसका मुख्य आधार शेली की प्रसिद्ध कविता Prometheus Unbound रही। इन्होंने इसमें थोड़ा-सा और बढ़ा दिया, और प्रोमीथियस के साथ-साथ उसके भाई एपीमिथियस को भी कथा में रख दिया। अतएव पूरी कविता का नाम पड़ा Prometheus and Epimetheus * जिसमें भाई तो पैंडोरा के प्रलोभनों में आकर आध्यात्मिक अवनति को प्राप्त होता है, पर प्रोमीथियस अपनी आत्मा के लिए सांसारिक सुखों का त्याग करता जाता है, और दुःख भोगता है।

इनका जीवन बहुत अव्यवस्थित रहा। रूस से यह स्वीज़रलैंड गए, और वहाँ भी पढ़ाने का काम करते रहे। तदनंतर बेसल में कुछ संपादन-कार्य करने लगे। सन् १८८३ में विवाह करके साहित्य की ओर विशेष ध्यान देने लग गए। एक अद्भुत ग्रंथ

* Jena (1881, 1924.)

इनका Extramundana नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें सृष्टि के विकास का इतिहास कविता में लिखा गया है। छोटी-छोटी कविताओं का एक संग्रह "तितली" * नाम से प्रकाशित किया, जिसमें प्रेम तथा प्रकृति-संबंधी अधिकांश कविताएँ हैं। विवाह के ७-८ वर्ष बाद इन्हें थोड़ी-सी जायदाद मिल गई, जिसके कारण अनेक चिंताओं से मुक्त हो गए, और अध्यापकी छोड़ कर, आनंद से जाकर लूसर्न में रहने लगे। वहाँ प्राकृतिक सौंदर्य के बीच में रहते हुए उन्हें काव्य करने का उत्तम अवसर भी मिला, और तभीसे साहित्य के कई विभिन्न विभागों में लिखने लगे। कुछ निबंध लिखे, जिन्हे Lachende Wahrheiten अर्थात् "हँसती सचाई" के नाम से छपाया। फिर एक गद्य-पद्यमय खंडकाव्य लिखा, और अंत में नवयुवकों के लिए एक विनोद तथा शिक्षा-पूर्ण उपन्यास Madchenfeinde नाम का लिखा, जिसका अंग्रेज़ी में Two Little Misogynists † नाम से अनुवाद भी हुआ है। इसमें दो विद्यार्थियों—जेरोल्ड और हैसली—की आत्मकथा है, जो किसी सैनिक स्कूल में पढ़ते हैं। इस कहानी में कहीं-कहीं रवि बाबू की गल्पों के-से स्थल हैं, जो युवकों को विशेषतः प्रिय लगते हैं।

कविताओं का दूसरा संग्रह Balladen ‡ नाम से, १९०५ में प्रकाशित हुआ, और फिर यह अपनी पुरानी पुस्तक प्रोमीथियस के ऊपर एक काव्यमयी टिप्पणी-सी लिखने लगे। इसका नाम रखा "इमागो" § जिसका नायक लेखक की ही भाँति 'विक्टर'

---

* *Schmetterlinge.*

† New York (1922)

‡ Zurich (1906).

§ Jena (1906, 1919).

नाम का एक कवि है। विक्टर की जीवनी में स्वयं लेखक की ही आत्मकहानी सन्निहित है, और सारी पुस्तक में जर्मनी की सामाजिक दशा तथा योरपीय समस्याओं की कुंजी मिलती है। इस ग्रंथ के बाद दूसरी कोई महत्वपूर्ण पुस्तक स्पिटलर ने नहीं लिखी। १९२५ ई० में उनका देहांत हुआ, और तब से अर्वाचीन साहित्यिक वायुमंडल में इनके प्रभाव का और स्पष्ट प्रमाण मिलता जा रहा है। जीवन के अंत तक यह लूसर्न में ही रहे और महायुद्ध के दिनों में अपने देश-वासियों से युद्ध से पृथक् रहने की ही प्रेरणा करते रहे। इसी कारण बहुत लोग इनसे असंतुष्ट होगए, और बुढ़ापे में राजनैतिक क्षेत्र में भी इन्हे थोड़ा-सा भाग लेना पड़ा। इसी झंझट में इनका साहित्यिक संदेश भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा। परंतु उस कोलाहल में भी बड़े-बडे साहित्य-मर्मज्ञों ने इनका वही आदर किया, जिसके वास्तव में यह पात्र थे। रोमें रोलाँ ने तो स्वयं पुरस्कार पाने के पश्चात् अपना खेद प्रकट किया कि स्पिटलर ऐसे धुरंधर लेखक को यह सम्मान क्यों नहीं दिया गया। उन्होंने इस विषय में यो लिखा था—

"Spittler is to my mind the greatest European poet, the only one to-day who approaches the most famous name of *the poet*... ....Strange blindness of the world to pass by the living flame of the genius of the most inspired poet........."

इन शब्दों से रोलाँ की गुण-ग्राहकता तो स्पष्ट ही है, स्पिटलर का भी महत्व झलकता है। ये पंक्तियाँ सन् १९१७ में लिखी गई थीं, और दो वर्ष पश्चात् ही रोलाँ की अभिलाषा पूरी होगई।

नुत हैमसन

सन् १९२० के पुरस्कृत लेखक में कई विशेषताएँ रहीं। अभी तक किसी भी विद्वान को एक ग्रंथ के लिए पुरस्कार नहीं दिया गया था, पर नारवे-निवासी नुत हैमसन (Knut Hamsun) को प्रतिष्ठा देते समय निर्णायकों ने साफ लिख दिया है—

"For his monumental work, *The Growth of the Soil.*" दूसरी बात यह थी कि जितना अव्यवस्थित इनका जीवन रहा है उतना और किसी भी विद्वान् का न रहा होगा। इसी कारण जब पुरस्कार की घोषणा हो गई, तो अमेरिका में समाचार-पत्रों ने इनकी सूचना देते हुए लिखा—The Horse-Car Conductor who wins the Nobel Prize!" यह सत्य अवश्य था कि अपने जीवन के किसी भाग में वह शिकागो की सड़कों पर मोटरों में कंडक्टर का काम करते थे, पर यह बहुत थोड़े दिनों तक। और, फिर ऐसी छोटी बात का ध्यान ही किसको रहता है? परंतु संपादकों को भड़कीली खबरें छापने से मतलब। अस्तु, हैमसन के पूर्वज साधारण किसान-घराने के थे, और कई वर्ष तक यह अपने गाँव में ही, मल्लाहों के साथ, जीवन व्यतीत करते रहे। अवस्था अच्छी न होने के कारण शीघ्र ही एक मोची के यहाँ ये काम सीखने लगे। पर तब भी इन्हें लिखने-पढ़ने की रुचि थी। १८७८ ई० में जब इनकी अवस्था १८ वर्ष की थी, इन्होंने एक गल्प तथा कविता छपाई। मोची के यहाँ स्वभावतः इनका जी नहीं लगा, और थोड़े दिन तक कोयले का, फिर सड़क बनाने का, फिर अध्यापक का और अंत में एक पादरी के यहाँ काम करने लगे। इनकी बड़ी इच्छा अमेरिका जाने की थी। वहाँ जाकर भी वही कठिनाइयाँ इनके सिर पड़ीं। अधिक योग्यता तो थी नहीं, कुछ दिन मोटरों में रहे, फिर मजदूरी करते रहे, और

फिर एक दूकान में क्लर्क हो गए। आप तो थे यहाँ बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध कर, पर दरिद्रता ने पीछा न छोड़ा, और इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहे। कुछ दिन तक तार की लाइन पर काम किया, पर अंत में निराश होकर स्वदेश लौट आए, और कुछ संपादन का काम करने लगे।

संपादन-कला में इन्हें पहले से ही बहुत रुचि थी। एक साल बाद फिर अमेरिका लौट गए। वहाँ यह एक नारवेजियन पत्र के संवाददाता रहे, पर इससे ही जीवन-यात्रा नहीं चल सकती थी। अतएव थोड़े दिन तक मजदूरी और फिर एक जहाज़ में काम करते रहे। एक वर्ष तक किसी पादरी के सेक्रेटरी रहे, और २८ वर्ष की अवस्था तक भी खेत में काम करते रहे। साहित्यिक आदर्शों की पूर्ति न होते देख, यह बड़े असंतुष्ट हुए, और नितांत निराश होकर कोपेनहेगेन को लौट आए। इसी निराशापूर्ण क्रोध में इन्होंने अमेरिका के ऊपर ही एक पुस्तक * लिख मारी। परंतु इसमें लिखी बहुत-सी बातों से यह स्वयं अब सहमत नहीं हैं। इस समय के और अनेक कटु अनुभव इन्होंने अपनी कहानियों में लिपिबद्ध कर दिए हैं।

स्वदेश लौटने पर इनकी एडवर्ड ब्रैंडीज़ से मैत्री हो गई। ब्रैंडीज़ उन दिनों एक दैनिक पत्र के संपादक थे, और उन्हीं के द्वारा इनका एक ग्रंथ किसी पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। फिर जब यह पुस्तकाकार छपा, तो इनका कुछ नाम हो चला, क्योंकि पत्रिका में इन्होंने अपना नाम नहीं दिया था। इसके प्रकाशन से जब उत्साह बढ़ा, तब इन्होंने धीरे-धीरे कई उपन्यास तथा नाटक लिखे। "सूर्यास्त" तथा "पैन" और

* The Spiritual Life of Modern America.

"संपादक लिज" इनमें से मुख्य हैं* । इन सभी पुस्तकों में प्रायः लेखक ने अपनी ही दुःख-पूर्ण रामकहानी की छाप डालदी है। "रहस्य" † नामक पुस्तक का नायक नैजेल ठीक हैम्सन की भाँति इधर-उधर ठोकरें खाता है, और अंत में प्रकृति में ही, सुख प्राप्त करता है। संसार में उपहास का पात्र होकर वह समाज में रोड़ा-सा अटका रहता है, और जीवन से निराश-सा हो जाता है। यही निराशा दूसरे नायक जॉनेस के भी चरित्र की विशेषता है, पर इसमें प्राकृतिकता का बड़ा प्राबल्य होने से इसे दु.ख नहीं झेलना पड़ता। अपनी ममता धीरे-धीरे इनके और ग्रंथो में कम होती गई है। "विक्टोरिया" ‡ तथा "भूख" § दोनों में ही इसका बहुत कम अंश है। पर आदर्शवाद, जो पुरस्कार का मुख्य ध्येय है, इनमें छू तक नहीं गया है। जैसा एक प्रसिद्ध लेखक ने इनके विषय में कहा है—

"The artist and the vagabond seem equally to have been in the blood of Hamsun from the very start."

अर्थात् घुमक्कड़ और कलाविद् दोनो की ही प्रतिभा हैम्सन में प्रारंभ से ही वर्तमान थी, और उन्हीं दोनों में परस्पर संग्राम होता

---

* *Sunset*, *Pan* (translated by W.W. Worster, New York, 1921) and *Editor Lynge*.

† *Mysteries*.

‡ *Victoria* translated by A. G. Cheater (New York, 1923.)

§ *Hunger* translated by George Egerton (London and New York.)

रहा। ज्यों-ज्यों कलात्मक रुचि का प्रभाव बढता गया, त्यों-त्यों आदर्शवाद की ओर इनका झुकाव भी अधिक होता गया।

पर, इस बीच में तीन नाटक इन्होंने ऐसे लिखे, जिनमें संसार की समस्याओं पर स्पष्टवादिता-पूर्वक विचार किया गया है, और यह पता चलता है कि इनकी प्रतिभा प्रौढता की ओर जा रही है। ये तीनों एक ही नायक की जीवनी, भिन्न-भिन्न समय पर, वर्णन करते हैं। "जीवन का खेल" * इनमें मुख्य है। ऐसे ही नाम का दूसरा नाटक In the Grip of Life † है, जिसका अनुवाद थोडे ही दिन पूर्व प्रकाशित हुआ है। पर इन छोटे-छोटे ग्रंथों का पाठकों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, और किसी को यह ध्यान भी नहीं था कि हैमसन कोई अपूर्व प्रतिभा के लेखक हैं।

सन् १९०९ में इनका ग्रंथ Children of the Age ‡ प्रकाशित हुआ, और शीघ्र ही इन्होने दूसरा ग्रंथ Segelfoss Town § लिखा। इन दोनों के पाठकों को यह प्रतीत होने लगा कि इस लेखक में सजीवता है, और तभी से साहित्यिकों में इनका एक विशेष स्थान हो गया। इन दोनो पुस्तकों में एक ही उपन्यास की कथा विस्तार-पूर्वक लिखी गई है। नायक किसी व्यक्ति-विशेष के स्थान पर एक पूरा परिवार ही है, जिसमें सामाजिक समस्याओं की बड़ी अच्छी उलझन-सुलझन है। होमेनग्रा-नामक एक बड़े लखपती की कन्या मैरियन अंत में पिता की विपत्ति के पश्चात्, एक छोटे गांव में विवाह कर लेती है, पर बीच-बीच

* *Life's Play.*

† Translated by Rawson (New York, 1924).

‡ Translated by J. S Scott (New York.)

§ Translated by J. S. Scott (New York, 1925)

में फौजी अफसर विलाज़ तथा उनके पुत्र और पत्नी सदृश बड़े मनोरंजक पात्र भी मिलते हैं। पर इनका सब से बड़ा ग्रंथ The Growth of the Soil* है, जिसका अमेरिका में बहुत नाम है। इसमें चित्रित जीवन मुख्यतः नारवे का जीवन है, पर पात्रों में सार्वभौमिकता तथा नित्यता है। आइजक स्वयं मानव स्वभाव की प्रतिमा है, और इंगर के साथ-साथ इसकी—कथा की—तुलना प्रकृति तथा पुरुष के सिद्धांत से की जा सकती है। यद्यपि नायिका अपने बच्चों को मार डालती है, पर उसके लक्ष्य एवं आदर्श की प्रशंसा करते ही बनता है। जैसा प्रोफ़ेसर वीर ने अपने ग्रंथ में लिखा है—हैमूसन नैतिक तथ्यों पर विचार नहीं करता। उसका तो ध्येय है दार्शनिक तत्व की प्राप्ति एवं विवेचना। नैतिकता के लिए उन्हें घृणा तो नहीं, पर उपेक्षा अवश्य है। वीर के ही शब्दों में—"It is just this absence of the triumph of a moral idea which will stand most in the way of any popularity of Hamsun's works with the great majority of American readers" † पर इस कठिनाई के साथ-ही-साथ उनके विचारों में परिपक्वता और निर्भयता है। विशेषतः इनके स्त्री-पात्रो में अधिक पौरुष तथा मानवता प्रकट होती है, जिससे हैमूसन की मौलिकता और भी स्पष्ट हो जाती है।

पर सबसे बड़ी बात यही है कि हैमूसन ने स्वयं व्यक्तिगत उन्नति के बल पर ही इतना नाम कमाया है; जो कुछ उन्होंने

---

* Translated by W. W. Worster (New York and London, 1921)

† Knut Hamsun: His Personality and His Outlook upon Life by J. Wiche (Northampton, 1922)

किया है, अपनी गाढ़े पसीने की कमाई से और अपनी आत्म-शिक्षा के कारण। इसीलिए यह अपने देश के किसानों की दशा से परिचित हैं, उनसे प्रेम करते हैं, और उनसे सहानुभूति रखते हैं। आप नारवे के बड़े भक्त हैं, और अपने देश की सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी प्रकार की उन्नति के लिए सदैव कुछ-न-कुछ किया ही करते हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि अभी यह इस वृद्धावस्था में भी इतनी साहित्य-सेवा करते रहते हैं। परमेश्वर इन्हें दीर्घायु करे।*

अध्याय ६

फ्रांस और यीट्स

अनातोले फ्रांस

अनातोले फ्रांस भी उन विद्वानो में थे, जिन्हें पुरस्कार वृद्धावस्था में मिला। पुरस्कार पाने के समय इनकी अवस्था ७७ वर्ष की थी, और तीन ही वर्ष पश्चात्, १९२४ ई० में, इनका देहांत हो गया। इनका पूरा नाम जैके अनातोले थिबो (Jacques Anatole Thibault) फ्रांस था और सन् १८४४ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता फ्रैंको नोयल थिबो पेरिस के एक प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता थे। इनके पितामह मोची का काम करते थे, और इन्होंने अपने पुत्र को कुछ शिक्षा देकर फौज में भरती करा दिया था।

---

* विशेष अध्ययन के लिए पढ़िए—*Knut Hamsun : A Study* by Hanna Astrup Larsen, (New York, 1922.)

फ़ौज में रह कर यह बहुत कुछ पढते रहे, और फिर लौट कर इनको पढ़ने का इतना शौक़ हो गया कि पुस्तकों की एक दूकान खोल दी। पुस्तकें बेचने की अपेक्षा यह पढ़ना ही अधिक पसंद करते थे। अनातोले ने अपनी एक पुस्तक में* अपने पिता के इस स्वभाव का उल्लेख भी किया है। इस दूकान पर देश के बड़े-बडे विद्वान् और राजनीतिज्ञ एकत्र होते थे, जिनका अनातोले पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बाल्यकाल की ये स्मृतियाँ इनके हृदय पर पक्की छाप डाल चुकी थीं, और लेखक की प्रतिभा के विकास में इनका बहुत भाग भी रहा है। अपने एक उपन्यास† के नायक के विषय में अनातोले ने स्वयं स्वीकार किया है कि इसके चित्रण में पुस्तकों की दूकान को छोड़ कर और सभी कुछ मेरे पिता जी का ही वर्णन है। इसी प्रकार माता का भी इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पिता तो अपने अध्ययन में व्यस्त रहते थे, माता इनको कहानियाँ सुनाया करती थीं, और यह समझती थीं कि लड़का होनहार है। बाल्यकाल के इस सुखमय जीवन की झलक इनकी "सिलवेस्त्र" ‡ नामक कहानी में भी पाई जाती है। रवि बाबू की भाँति इन्हें भी पाठशाला की कक्षाएँ बड़ी भयानक जान पड़ती थीं। यह कहा करते थे—"Ah, home is a school." प्रायः दुपहरी में सीन-नदी के किनारे एकांत में जा बैठते और वहाँ से लौट कर आना भी भूल जाते थे। इस प्रकार के मनोरंजक विवरण इनकी पुस्तक On Life and Letters § में मिलते हैं।

* The Bloom of Life.

† Pierre Noziere.

‡ The Crime of Sylvestre Bonnard.

§ Translated by A. W. Evans, (London and New York, 1923-25).

स्कूल के शिक्षकों का यह कहना था कि यह लड़का कुछ नहीं कर सकेगा ; पर इनकी माता को न जाने क्यों विश्वास-सा था कि बच्चे में प्रतिभा अधिक है। और उसी समय इन्होंने अनातोले से कहा था—

" Be a writer, my son ; you have brains and you will make the envious hold their tongues."

माता की यह दूरदर्शिता ठीक उतरी, और शीघ्र ही यह लिखने का अभ्यास करने लगे। २४ वर्ष की अवस्था में इनका पहला लेख प्रकाशित हुआ और फिर यह फौज में काम करने लगे। परन्तु वहाँ भी मनोविनोद के लिए पुस्तकें पढ़ते और बाँसुरी बजाते रहे।*

एक-आध वर्ष तक इधर-उधर का संपादकीय कार्य करते रहे, और कुछ लिखते रहे। फ्रांस और प्रशिया में जो युद्ध छिड़ा था, उसके समाप्त होते ही इन्होंने छोटी-छोटी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया ; पर इसका कुछ आदर न हुआ। तीन वर्ष पश्चात् इनका The Bride of Corinth नामक उपन्यास निकला, जिसमें लेखक की शक्तियों का परिचय मिलने लगा। थोड़े दिनों तक सिनेट-पुस्तकालय में काम करते रहे, और पेरिस में साहित्यिकों के प्रेम-पात्र होने लगे। इनकी पहली प्रसिद्ध पुस्तक " सिलवेस्त्र " १८८१ ई० में, प्रकाशित हुई, जिसके कारण इनका बहुत नाम हो गया। यह कथा बहुत ही सरल, पर हृदय-ग्राही है, और इसकी समालोचना करते समय सभी विद्वानों ने लेखक के उज्ज्वल भविष्य के विषय में आशाएँ प्रकट की थीं। पर कुछ दिन

---

* *Anatole France the Man and His Work* by J. L. May (New York), page 72.

पश्चात् लेखक स्वयं ही इस पर हँसता और कहता कि लोग न जाने क्यों इस पुस्तक की प्रशंसा करते है, इसे तो मैंने बाएँ हाथ का खेल समझ कर एक छोटे से पारितोषिक के लिए लिखा था।* चार वर्ष बाद युवावस्था की स्मृतियो का संग्रह My Friend's Book के नाम से प्रकाशित किया, जो पहले उपन्यास से अधिक सजीव है। बूढ़े सिलवेस्त्र से सहानुभूति का उद्रेक अवश्य होता है, पर उसमें वैराग्य तथा बुढ़ापे का प्राबल्य है। हाँ, बुढ़ापे की सनक में नायक कभी-कभी बचपन के खिलवाड़ों की याद अलबत्ता करता है। इस ग्रंथ के कई वर्ष पश्चात् इनका दूसरा महत्व-पूर्ण उपन्यास निकला, जिसे कुछ लोग सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। इसका नाम था Thais, अनातोले स्वयं भी कहते थे कि मैंने अब तक जनता के आनंद के लिए पुस्तकें लिखी थीं, पर यह ग्रंथ "स्वान्तः-सुखाय" लिखा है। इस बीच में एक आध पत्रों में आलोचनात्मक लेख लिखने के अतिरिक्त इन्होंने और कुछ किया भी नहीं, और अधिकतर दक्षिण के देशों में भ्रमण करते रहे। पत्नी से कुछ अनबन भी हो चली थी, और भिन्न-भिन्न देशों में प्राकृतिक सौंदर्य-निरीक्षण से इनके हृदय में काव्य तथा वास्तविकता का एक अद्भुत सम्मिश्रण उठ खड़ा हुआ था। इस उपन्यास के नायक को ही लेखक ने अपने आंतरिक भावों का प्रकाशक बनाया है, यद्यपि बाद की एक-दो और पुस्तकों में भी ऐसे ही भाव हैं। The Revolt of the Angels तथा The Gods are Athirst में ऐतिहासिक भीषणता के साथ-साथ मानवीय सहानुभूति का भी बहुत अंश है। फरिश्ते जब पेरिस नगर का पतन-पूर्ण दृश्य देखते और

* *Anatole France Himself* by Broussean (Philadelphia), 1925.

परमात्मा के विरुद्ध आंदोलन करते हैं, तो साथ ही साथ प्रेमियों के भी बड़े कुत्सित चित्रण मिलते हैं। दूसरी ओर बूढ़े पुस्तकाध्यक्ष का विद्या-व्यसन भी अद्भुत है, और पुस्तकालय में से जब बड़े-बड़े पोथे उड़-उड़कर भागने लगते हैं, तो दृश्य अत्यंत स्वर्गीय एवं अभूतपूर्व हो जाता है। यदि इस कथा में पार्थिव तथा दैवी का सम्मिलन है, तो दूसरी में फ्रांस के इतिहास के उस समय का चित्र है, जब शक्ति-लोलुपता मानव-रक्त की प्यासी थी, और देश में हाहाकार मचा हुआ था। दयनीय स्थलों की बात तो और ही है; पर एकाध स्थान पर तो ऐसे वर्णन हैं, जो सभ्य रुचि के सर्वथा प्रतिकूल प्रतीत होंगे। शायद इन्हीं कारणों से अनातोले की बहुत सी पुस्तकें पुस्तकालयों में नहीं आने पाती थीं। पुरस्कार मिलने के पश्चात् जाकर कहीं यह विरोध कम हुआ। यों भी फ्रांस के लोग इनसे बहुत घबराते थे, और फ्रेंच पत्रों में इनके प्रतिकूल प्रायः लेख निकला करते थे। कहते हैं, जब यह पुरस्कार लेने स्टॉकहाम गए, तो स्वीडिश एकेडमी की बड़ी प्रशंसा करने लगे, और इस बात पर बड़े प्रसन्न हुए कि महायुद्ध के बाद उनके लिए पुरस्कार का निर्णय इस बात का द्योतक है कि—

"What is for me the principal lesson of the war, the beneficent influence exerted by intellectual intercourse with other countries."

उन्हीं दिनों वरसाई की संधि हुई थी। जब लोगों ने पूछा कि योरप पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, तो आप ने कहा—यह संधि नहीं, किन्तु लड़ाई की वृद्धि मात्र है। साथ ही रवि बाबू की भाँति यह भी कहा कि—

"The downfall of Europe is inevitable unless at

long last the spirit of reason is imported into its councils." *

इन शब्दों से विरोध की आग और भड़क उठी, और अनेक नवयुवक इनके नेतृत्व को संशय की दृष्टि से देखने लगे। पर यह तो अपनी एक पुस्तक में चित्रित ब्रोटो की ही भाँति थे, जो राजनीतिज्ञों के प्रति अपनी अश्रद्धा के कारण ही फांसी पर लटका दिया जाता है किन्तु इन्हें तो अपने सिद्धांतों में विश्वास था—यह बराबर अपनी धुन के ग्रंथ लिखते रहे। और भी विकट ग्रंथ हैं—The Red Lily, At the Sign of the Reine Pedauque, The White Stone तथा The Amethyst Ring. मनोरंजक पुस्तकों में से The Wicker-work Woman, the Seven Wives of Bluebeard और Tales from a Mother of Pearl Casket हैं। इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक रहस्य-पूर्ण पुस्तकों में से Life of Jeanne d' Arc है, जिसका विषय वही है, जो बर्नर्ड शॉ के नाटक Joan of Arc का है। Penguin Island में हास्य-रस भी है। परन्तु इनकी उत्तमोत्तम पुस्तकों में ऐतिहासिकता की इतनी गहरी छाप है कि कभी-कभी जी ऊब जाता है। हाँ, बीच-बीच में बड़े महत्व-पूर्ण सार्वभौमिक सिद्धांत अलबत्ता मिलते हैं। एक ऐसा ही स्थल उस उपन्यास के अंत में आता है, जिसमें लेखक ने उसी समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है, जिसका मिल्टन ने अपने Paradise Lost में प्रतिपादन किया है। स्वर्ग के दूत मानवीय शरीर धारण कर परमात्मा पर अपराध का आरोपण करके उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ते हैं, और अंत में कहते है कि वास्तविक सत्य तथा विश्राम युद्ध द्वारा नहीं

* Anatole France: the Man and His Work (London), page 108.

आत्मान्वेषण द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। सच तो यह है कि इनकी सभी पुस्तकों में इसी प्रकार का कोई न कोई तथ्य अवश्य है। उनकी प्रेममयी कथाओं में भी प्रेमियों के साधारण दृश्य नहीं मिलते। इन्होने स्वयं कहा है कि इनके जीवन में कभी उत्कृष्ट प्रेम की आकांक्षा नहीं उत्पन्न हुई। इस दृष्टि से तो इनके बहुत कम उपन्यास ऐसे हैं, जिन्हें साधारण औपन्यासिक आदर्श के अनुकूल हम कथानक कह सकते हैं। पर फ्रांस के साहित्यिक इतिहास में अनातोले का नाम एक विशिष्ट स्थान का पात्र है जैसा कि प्रसिद्ध समालोचक लैफकैडियो हार्न ने * लिखा है—

"If by realism we mean truth, which alone gives value to any study of human nature, we have in Anatole France a very dainty realist; if by romanticism we understand that unconscious tendency of the artist to elevate truth itself beyond the range of the familiar and into the emotional realm of aspiration, then Anatole France is at times a romantic * * *. It is because of his far rarer power to deal with what is older than any art, and withal what is more young and incomparably more precious: the beauty of what is beautiful in human emotion * * *.

अनातोले के विचारों तथा जीवनी के ऊपर अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। Studies in Ten Literatures†, Those

* Introduction of Sylvestre Bonnard, (1924).

† By Ernest Boyd, (New York, 1925).

Europeans * तथा French Novelists of To-day†, इन तीन ! पुस्तकों में इनके ऊपर भिन्न-भिन्न लेख हैं; इनके अतिरिक्त The Opinions of Anatole France‡ नामक एक अलग ग्रंथ है। इसमें डाक्टर जॉनसन की भाँति अनेक विषयों पर इनके मतों का संग्रह है। न्यूयार्क से इनकी पुस्तकों का संग्रह भी ३१ पोथियों में एकत्र छपा है § यों तो इनके जीवन-भर अमेरिका आदि देशों में इनके ग्रंथों पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये गये थे, पर देहांत होने पर संसार का कोई भी साहित्यिक पत्र ऐसा नहीं था, जिसमें इनके विषय में महत्व-पूर्ण लेख न प्रकाशित हुए हों। अनातोले फ्रांस सर्वथा इस प्रतिष्ठा के पात्र भी थे।

जैसिंतो बेनावंत

सन् १९०४ ई० में स्पेन के नाट्यकार एकीगरी को पुरस्कार मिल चुका था, और तब से लोग स्पेन के नाटकीय साहित्य के पठन-पाठन में दत्तचित्त हो गये थे। ऐतिहासिक दृष्टि से स्पेन के साहित्य के दो स्पष्ट विभाग हो सकते है। एक तो वह भाग जो बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से पूर्व ही लिखा जा चुका था, और जिसके वायु-मंडल में एकीगरी का जीवन बीता था। परन्तु स्पेन

* By Sisley Huddlestone, (London & New York,) 1924.

† By W. Stephens, (London & New York, 1908)

‡ By Paul Gsell, (1924).

§ Dodd Mead & Co., (New York)—Library Edition and Tours Edition.

और अमेरिका के युद्ध के पश्चात् नवयुवकों का एक ऐसा संगठन बन गया था, जिसकी प्रबल इच्छा थी कि प्राचीन परंपरा एवं आदर्श अनावश्यक होने के कारण त्याज्य हो जाना चाहिए। इस नवीन दल का विशेष विवरण " A Study of the Modern Drama " * नामक ग्रंथ में विशद रूप मे मिलता है। बेनावंत इसी दल के अगुआ थे। इनका पूरा नाम जैसिंतो बेनावंत (Jacinto Benavente) था। इनका जन्म १८६६ ई० में स्पेन की राजधानी मैड्रिड नगर में हुआ था। इनके पिता वहाँ के बडे अच्छे वैद्यों में से थे, और चाहते थे कि लड़का वकालत करे। थोडे दिनों यह कानून पढ़ते भी रहे; पर इनका चित्त लगता था नाटकों के लिखने और अभिनय करने में। कुछ दिन तक नाटक-मंडलियों के साथ घूम-फिर कर अनुभव भी प्राप्त करते रहे, जिससे रंगमंच की कठिनाइयों का इन्हें भली भाँति ज्ञान हो गया। कविताओं का संग्रह प्रकाशित करके १८९३ ई० में, एक नाटक लिखा और फिर तीन वर्ष बाद दूसरा। इन दोनों पुस्तकों में कुछ महत्व न था। सन् १८९८ में The Banquet of Wild Beasts, नामक एक फड़कता हुआ नाटक लिखा जिससे इनका नाम हो गया, और तभी (१८९८ ई०) से स्पेनिश नाट्य-साहित्य का नवीन युग प्रारंभ हुआ, जिसे " The Generation of 1898 " कहते है।

परन्तु इस दल के नेता होते हुए भी बेनावंत ने अपनी वैयक्तिक सम्मतियों को दल वालों के हाथ नहीं बेच दिया, वरन् उन्हें और परिमार्जित कर लिया। वह प्राचीन परंपरा के नितांत विरोधी नहीं थे, पर पुराने धनिकों पर आक्षेप तथा आधुनिक किसानों के दयनीय जीवन के सहानुभूति-पूर्ण समर्थक अवश्य थे। इस प्रकार के इनके कई नाटक हैं—The Truth, Field of Ermine,

* By Barret H. Clark (New York, 1925).

Autumnal Roses तथा Magic of an Hour—जिनके पढ़ने से पाठकों में नवीन विचारों का प्रादुर्भाव होता है, और अंत वाले में तो कहीं-कहीं उपनिषदों की-सी छटा देख पड़ती है। इस नाटक का नाम Magic of an Hour इसलिए रक्खा गया है कि इतना क्षणिक प्रभाव और किसी का नहीं, केवल प्रेम का ही होता है, जिसके कारण पशु एवं व्यभिचारी लोग भी तनिक देर में बन जाते हैं—"Spirits of light, luminous with a divine wisdom through all instincts of the beast" * । इससे भी आकर्षक नाम है The Necklace of Stars, जिसमें कल्पना की पराकाष्ठा हो गई है। इस प्रकार इनके नाटकों की संख्या १४४ के लगभग पहुँच जाती है, जिनमें से कई तो फ़िल्म द्वारा अमेरिका में बहुत ही लोकप्रिय हो गए हैं। एक का नाम है La Malquerida†, जिसमें किसानों के जीवन की दुःख-पूर्ण कथा है, और जिसकी प्रसिद्धि अमेरिका भर में प्रख्यात अभिनेत्री नैसी ओनील द्वारा हुई है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कंपनियों ने The Bonds of Interest-नामक नाटक का भी अध्ययनपूर्वक अभिनय किया है। बेनावंत ने स्वयं इँगलैंड, रूस तथा अमेरिका जाकर अपने नाटकों का रंगमंच पर अभिनय होते देखा है। उनका कहना है कि नाटकों का वास्तविक रहस्य दर्शकों अथवा पाठकों की मानसिक धारणा द्वारा ही प्रकट हो सकता है। अभिनय में उनका बहुत विश्वास भी नहीं है, और उन्होंने लिखा है—

"I have written more than a thousand parts, yet

---

* *Magic of an Hour* (Charles Scribner's Sons), page 125.

† *The Passion Flower* नाम से इसका अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ है।

विलियम बटलर यीट्स

जिस प्रकार अमेरिका का साहित्य पृथक् है, वैसे ही आयर्लैंड का भी अपना एक भिन्न साहित्य है। राजनीति में ही नहीं, कविता के भी क्षेत्र में वहाँ के लोगों का विचित्र उत्साह रहा है। जिस प्रकार भारतवर्ष में एक नवीन जागृति* उत्पन्न हो गई है, वैसे ही आयर्लैंड में भी नये-नये आदर्श प्रतिपादित हो रहे हैं। कई वर्ष हुए, लेडी ग्रिगारी ने "आयर्लैंड के आदर्श"—नामक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ† लिखा था, जिसमें उस देश के जार्ज मूर तथा यीट्स आदि कवियों की कृतियों पर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के कई वर्ष पश्चात्, १९२३ ई० में, यीट्स को नोबेल-पुरस्कार मिला; पर इसके बहुत पहले ही यह आयर्लैंड के प्रमुख कवि तथा नेता स्वीकृत हो चुके थे। इनका कार्य विशेष कर ग्राम्य जीवन तथा काव्य की उन्नति करने में रहा है। यह रवि बाबू के पुराने मित्रों में से हैं, और पहले पहल इन्होंने उनकी गीतांजलि के सौंदर्य का अनुभव किया था, तथा उसे पाश्चात्य संसार के सम्मुख प्रकट किया था।

विलियम बटलर यीट्स का जन्म डब्लिन में १५ जून, १८६५ ई० को हुआ था। इनके पिता जान बटलर यीट्स प्रसिद्ध चित्रकार थे। उनकी इच्छा थी कि विलियम भी चित्रकला के ही उपासक हों। बाल्य-काल में यह अपने दादा और नाना के साथ बहुधा रहे; फिर लंदन में पढ़ते रहे। इनके नाना स्लीगो में जहाज़ों का काम करते थे; वहीं रह कर इन्हें समुद्र की प्राकृतिक

---

* देखिए, Dr J H. Cousins कृत *Indian Rennaissance* (Ganesh & Co., Madras.)

† *Ideals in Ireland* (London, 1901.)

शोभा निरीक्षण करने को मिली। तब से लंदन और डबलिन में इनका चित्त नहीं लगता था,* और जैसा इन्होंने अपने एक उपन्यासों में लिखा है, इनकी इच्छा उन्हीं पुराने मकानों के पास बैठे-बैठे समुद्र की लहरों के खिलवाड़ देखने की बराबर बनी ही रहती थी। कुछ दिनों तक पिता के आज्ञानुसार यह चित्रकारी का अध्ययन करते रहे; पर फिर देखा कि पुस्तकालयों में बैठकर पढ़ते रहना अथवा किसानों के देहाती गीत सुनना इससे भी अधिक अच्छा है। जीवन भर ग्राम्य साहित्य तथा सभ्यता की स्मृतियों की छाप इनके हृदय पर लगी रही, यहाँ तक कि १९०६ ई० के संग्रह में इस विषय पर इनकी एक लंबी कविता भी है, जिसमें उन कपोल-कल्पित काले-काले मनुष्यों का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

"The dark folk who lived in souls
Of passionate men, like bats in the dead trees."

जब यह डबलिन-विश्वविद्यालय में पढ़ते थे, तभी इनकी कवितायें युनिवर्सिटी रिव्यू में प्रकाशित होती थीं। वहीं एक बार एक ब्राह्मण से इनकी मुलाक़ात हो गई जिससे भारत वर्ष की बहुत सी दार्शनिक कथाएँ सुनते रहे। तभी से इनके भीतर पूर्वीय जीवन तथा रहस्याच्छादित सभ्यता के प्रति श्रद्धा हो चली। अज्ञात-नामक उपन्यास प्रकाशित कराने के पश्चात्, १८८९ ई० में, The Wandering of Oison नामक एक दूसरा उपन्यास लिखा, जिसके कारण इनका बहुत नाम हुआ। इसी बीच में लेडी ग्रिगारी आदि मित्रों की सहायता से एबे थियेटर नामक एक नाट्यशाला बन गयी थी। इसके कार्यकर्त्ताओं ने नव-युवक यीट्स को बड़ा प्रोत्साहन दिया, और तभी से यह नाटक

* *John Sherman and Dhoya* (New York), 1891.

भी लिखने लगे। रवि बाबू के King of the Dark Chamber की श्रेणी का एक नाटक The King's Threshold और दूसरा The Land of Heart's Desire लिखा जिसका अभिनेताओं ने बड़ा आदर किया। रंगमंच पर इसे बहुत सफलता प्राप्त हुई ; एक समालोचक ने तो इसे "The most beautiful thing that has been done in our time" ऐसा कहा है। इस नाटक में बड़ी माधुर्य-पूर्ण एवं धारावाहिक शैली के अतिरिक्त देहात के जीवन की अच्छी छटा दिखाई गई है। इन्होंने छायावाद की बहुत सी कविताएँ अब तक प्रकाशित की थीं, पर कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। The Hour-Glass-नामक एक महत्व-पूर्ण नाटक लिखा, जिसमें समस्या तो धार्मिक है, पर रूप में कुछ छायावाद की झलक है। यह पहले-पहल गद्य में लिखा गया था, फिर पीछे पद्य भी सन्निहित कर दिया गया। इसका नायक Wise Man मृत्यु के निकट होने पर स्वर्ग जाने के लिए किसी सहायक की खोज में इधर-उधर फिरता है। जंगल में एक मूर्ख से उसे सहायता मिलती है, और अंत में तथ्य निकलता है—

"सब तें भले हैं मूढ़ जिनहिं न ब्यापी जगत-गति"

पूर्णतः छायावादी ग्रन्थ इनका वह नाटक है, जिसका नाम भी कुछ रहस्यात्मक है। वह है Shadowy Waters, जिसका अर्थ है "छायामय पानी"। यह ग्रन्थ यीट्स ने बहुत पहले प्रारंभ किया था ; फिर धीरे-धीरे इसमें बहुत परिवर्तन किया। इसके पात्रों में बड़ा रुचि-वैचित्र्य है। एक-आध स्थलों पर तो जादू का साम्राज्य-सा जान पड़ता है। इसी ग्रन्थ में लेखक की सच्ची स्वप्नमयी प्रतिभा का परिचय मिलता है। क्योंकि इनकी मौलिकता का मूल्य इनके भाव-पूर्ण स्वप्नों में ही है। इसी नाटक के नायक राजा फ़ोर्जल के शब्दों में—

"All would be well
Could we but give us wholly to the dreams,
And get into their world that to the sense
Is shadow * * * * *
* * * for it is dreams
That lift us to the flowing, changing world,
That the heart longs for * "

इसी प्रकार के स्वप्नमय संसार में रहना ही सच्चे काव्य की आत्मा है। स्वप्नों की प्रचुरता इनकी कहानियों में भी पाई जाती है, जिनका एक अद्भुत संग्रह The Secret Rose-नाम से अलग छपा है, जिसमें Binding of the Hair सब से उत्तम है। इनकी फुटकर कविताओं में भी यही गुण है, और इनके पढ़ने से वैसा ही प्रतीत होता है, जैसा किसी बड़े कवि ने कहा है—

"We are the music makers,
And we are the dreamers of dreams."

इस दृष्टि से यीट्स, शेली तथा कीट्स के कोटि के कवि हैं। शेली के ऊपर तो इन्होने एक बहुत ही विवेचनात्मक लेख अपने ग्रन्थ Ideas of Good and Evil में लिखा है। साहित्यिक क्षेत्र में इनसे और बर्नर्ड शॉ से बड़ा विरोध रहता है, और आजकल यह शिक्षा एवं राजनीति दोनों में बड़ा उत्साह-पूर्ण भाग लेते हैं। जब से आयर्लैंड की स्वाधीनता का प्रश्न छिड़ा है, तभी से स्वदेश के भविष्य-चिंतन में आप संलग्न रहते हैं, और आयरिश फ्री स्टेट के सिनेट के सदस्य भी निर्वाचित हो गये हैं। यों तो राजनीतिक दृष्टि से बर्नर्ड शॉ के कई नाटक बड़े तगड़े समझे जाते हैं, और अँग्रेज़ लोग उनसे बहुत घबराते हैं; पर यीट्स से उनका मतभेद

* *Poems* by W. B. Yeats (New York, 1919) pp. 206-7.

कविता के संबंध में है। शॉ और उनके अनुयायियों का, मैथ्यू अरनॉल्ड के अनुसार, कहना है कि कविता जीवन की आलोचना है (Poetry is the criticism of life), पर यीट्स कहते हैं कि काव्य का अंतिम ध्येय जीवन का स्पष्टीकरण एवं प्रस्फुटन है। दूसरी बात यह है कि शॉ के ग्रन्थों में देहात के जीवन तथा विचार के प्रति वह सहानुभूति और प्रेम नहीं मिलता, जो यीट्स की साहित्यिक सेवा का प्रधान लक्ष्य रहा है। ग्राम-साहित्य की इस सेवा के लिए विशेषतः और सभी ग्रन्थों के लिए साधारणतः इन्होंने सर्वत्र लेडी ग्रिगारी की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। इनका कहना है कि आयर्लैंड में इस महिला की कहानियों का आर्थर की कथाओं से कुछ कम आदर नहीं है। इन दोनों साहित्यिकों ने साथ-साथ कार्य करके अपने देश का बहुत बड़ा उपकार किया है, और श्रीमती ग्रिगारी तो प्रारंभ में यीट्स की पंक्तियों का संशोधन करके गुरु का भी काम करती थीं।

यों तो यीट्स को पुरस्कार मिले ९ वर्ष हो गये हैं, पर इन पर कई अच्छे ग्रन्थ पहले से ही लिखे जा चुके थे। आयरिश थियेटर के लिए लिखित तथा इनके अन्य ग्रन्थ एवं संग्रह मैकमिलन कंपनी ने तो प्रकाशित ही किये हैं, इनकी जीवनी तथा काव्य-कला पर भी कई पुस्तकों में प्रकाश डाला गया है* । अभी यीट्स

* इस संबंध में तीन ग्रन्थ विशेष अध्ययन के योग्य हैं—

1. *W. B. Yeats : a Critical Study*, by Forrest Reid (New York, 1915).
2. *W. B. Yeats and the Irish Literary Revival*, by H. S. Kraus (London 1905).
3. *W. B Yeats : a Literary Study*, by C. Wrenn (London, 1920).

की अवस्था ६७ वर्ष की है । आशा है, यह अभी और बहुत अधिक स्वदेश और साहित्य की सेवा कर सकेंगे। अपने देश के ग्रामीण जीवन एवं काव्य के संबंध में इनका कार्य हम भारतीयों के लिए विशेष अनुकरणीय है।

अध्याय ७

रेमाण्ट तथा बर्नर्ड शॉ

रेमांट

पुरस्कार-निर्णायकों का सदा से ही यह ध्येय रहा है कि जहाँ तक हो, छोटे-छोटे देशों के साहित्यिकों को प्रोत्साहन मिले, और वहाँ के काव्य तथा जीवन पर विशेष प्रकाश पड़े। संसार के मानचित्र पर यदि किसी देश का नाम प्रतिष्ठा-पूर्वक नहीं लिखा जाता है, तो कोई कारण नहीं कि वहाँ के कवि एवं लेखक किसी प्रकार घट कर है, अथवा गौरव के पात्र नहीं हो सकते। पोलैंड भी उन्हीं छोटे और उपेक्षित देशों में था; पर १६०५ ई० से, जब हेनरी सिंकीवीच को पुरस्कार मिला, यहाँ के साहित्य की ओर संसार का ध्यान आकर्षित होने लगा। सिंकीवीच ने आक्रांत एवं दुःखित पौलेंड का चित्र खींचा था, पर १६२४ ई० के पुरस्कृत उपन्यासकार रेमांट ने अपने देश के किसानों का सहानुभूति-पूर्ण वर्णन किया। निर्णायकों ने स्पष्ट शब्दों में इन्हें पुरस्कार देने का कारण भी लिख दिया—और बहुत संक्षेप में—कि "For his great epic *The Peasants*"*

---

* Inscription with the Nobel Prize Award, 1924.

रेमांट का पूरा नाम लेडिस्लाॅ स्टैनिस्लाॅ रेमांट (Ladislaw Stanislaw Reymont) है, और यह बहुत साधारण कुल के हैं। इनके पिता ने गाँव में चक्की खोल रक्खी थी, और इसी से परिवार का निर्वाह होता था। रेमांट का जन्म १८६८ ई० में, वहीं गाँव में, हुआ था। छुटपन में यह खेती का काम देखते तथा ढोर चराते रहे। कभी-कभी गाँव की पाठशाला में पढ़ने भी जाते थे; पर उन दिनों पोलैंड में रूसी राज्य की तूती बोलती थी, यहाँ तक कि पाठशालाओं में लड़के पोलिश भाषा भी नहीं बोलने पाते थे। बालक रेमांट को यह बात बहुत खटकती रही, और इन्होंने मातृभाषा बोलना नहीं छोड़ा। इसके लिये कई बार ये स्कूल से निकाले भी गये।

पढ़ाई छोड़ने पर यह एक दूकान में क्लर्क हो गये। फिर रेल के दफ़्तर में काम करते रहे, और कुछ दिनों तारघर में भी रहे। नवयुवक थे ही, सैर-सपाटा करने की इच्छा बहुत थी, जिसका चित्रण " The Dreamer "-नामक अपने ग्रन्थ में इन्होंने स्वयं किया है। उसका नायक भी लेखक की ही भाँति उत्साही युवक है, और निरंतर महत्वाकांक्षाओं के स्वप्न देखा करता है। इस समय इनकी तबियत कहीं एक जगह न लगती थी, जीवन बड़ा अव्यवस्थित-सा था। दफ़्तरों से ऊबकर यह एक छोटी नाटक-मंडली में सम्मिलित हो गये, और अभिनय सीखते रहे। इस समय के जीवन की छाया The Comedienne * तथा Lilly दो ग्रन्थों में मिलती है। मंडली में भी जी न लगा, तो पॉलिस्ट पादरियों के साथ कुछ दिन बिताये। इतने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त करने पर भी इनकी आदर्शवादिता कम न हुई, और

* Translated by Edmund Obecuy (Putnams, New York, 1920.)

अपने देश के अकिंचन किसानों के प्रति पूँजीपतियों के अत्याचारों से दुखित होकर यह उनकी दीन दशा के सुधार के लिये प्रयत्नशील हुए। इस विषय पर इन्होंने एक ग्रन्थ भी लिखा, जिसका नाम The Promised Land है, और जो इनके उच्चादर्शों का द्योतक है। इसमें सहानुभूति तथा कला के वे अंकुर अवश्य हैं, जो आगे चलकर इनके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ में विकसित हुए ; पर Ferments, The Vampire अथवा Opium Smokers की कथाओं से इनकी कथा कुछ बढ़कर नहीं है। जैसे इन पुस्तकों में क्रांतिकारियों तथा विद्रोहियों के वर्णन हैं, वैसे ही इसमें भी भविष्य के किसी आदर्श देश की कल्पना है। पर न तो इसमें सिंकीवीच का नाट्य-कौशल अथवा ऐतिहासिक विवरण है, और न ज़ोला की प्रगाढ़ प्राकृतिकता। यह पुस्तक ज़ोला के Germinal की श्रेणी की कही गई है। सिंकीवीच का अनुकरण करके रेमांट ने 'The Year 1794'-नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखा था, पर विवरणों की अधिकता के कारण इसमें ऐतिहासिक चित्रण फीका पड़ गया है।

इन सब का कारण रेमांट की सरलता एवं सहृदयता है, और इसी लिये उनकी कहानियों में न तो संगठन है, और न एकाग्रता। अलबत्ता उनमें दरिद्रों के प्रति गहरी सहानुभूति है, और वह दीन-दुखियों के स्वातंत्र्यप्रेम तथा मानसिक भावों को भली भाँति समझते हैं। यों तो पुस्तक एक में उन्होंने एक लड़की का चित्र खींचा है, जिसके जीवन का लक्ष्य सुन्दर बनना था, यद्यपि यह कभी पूरा न हो सका ; पर इनकी सच्ची मौलिक प्रतिभा पोलैंड के ग्राम्य जीवन के यथार्थ वर्णन में ही मिलती है, जैसा कि एक समालोचक ने लिखा है—

"Reymont was born to be the epic poet of the Polish village." *

यद्यपि रेमांट ने अपना अधिकांश जीवन पेरिस में बिताया है, तथापि अपने देश और गाँव का प्रेम इनके हृदय में वैसा ही प्रबल है, जैसा बाल्य-काल में था। यह कई बार अमेरिका भी गये, पर वहाँ के कोलाहलपूर्ण समाज में इनका जी न लगा, और न इन्हें ख्याति कमाना ही इष्ट था। इनकी एक-आध पुस्तकों के अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके थे, और अंतर-राष्ट्रीय साहित्य में इन्हें स्थान भी मिल चुका था। इनकी कई कहानियाँ संसार की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कहानियों के संग्रह † में सम्मिलित हुई हैं, और कुल मिलाकर इनके उपन्यासों की संख्या २० से ऊपर है।

पुरस्कार मिलने के थोड़े ही दिन पूर्व इनके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ का एक भाग अँगरेज़ी में अनूदित होकर निकला था ‡। यद्यपि अनुवादक महोदय क्रेको विश्वविद्यालय में अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर थे, तथापि पुस्तक की ओर किसी का विशेष ध्यान न गया। हाँ, पुरस्कार-प्रकाशन के पश्चात् तो इसकी धूम ही मच गई, और पुस्तक के शेष अंशों की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाने लगी। इस कहानी के चार भाग हैं, जिनके नाम से ही लेखक का प्रकृतिप्रेम सूचित होता है। चारों नाम वर्ष-भर की चारों मुख्य ऋतुओं के ऊपर रक्खे गये हैं। जाड़ा (Winter), वसंत (Spring)

---

* Rupert Hughes: Preface to the German edition of *The Peasants.*

† *World's Classics* (Oxford University Press), 1921.

‡ *Autumn* translated by M. H. Dziewicki (Knopf, New York), 1922.

तथा ग्रीष्म (Summer), ये तीन खंड शरद् (Autumn) के बाद प्रकाशित हुए। जान-बूझकर ही ये प्रकृति-सूचक नाम रक्खे गए हैं ; क्योंकि पुस्तक में किसानों के जीवन का विस्तार-पूर्ण विवरण है, जो सर्वथा प्राकृतिकता में सराबोर रहता ही है। यों तो पोलैंड के कृषक-जीवन का वर्णन अन्यान्य पोलिश लेखकों ने भी किया है, पर The Peasants में कई विशेषताएँ हैं। कथा में विस्तृत चित्रण तथा निर्भीक आदर्शवाद तो हैं ही, मार्मिक जिज्ञासा और सहानुभूति भी है। यदि कहीं-कहीं ज़मींदारों से कृषकों का स्वाभाविक भय मिलता है, और श्रम-जीवियों तथा धनाढ्यों का संघर्ष है, तो मानव-स्वभाव के सनातन भावों—प्रेम, द्वेष, क्रोध आदि—की भी लीलाओं के असंख्य उदाहरण पाये जाते है। कहानी धीरे-धीरे चलती है अवश्य ; पर भिन्न-भिन्न ऋतुओं के गमनागमन में इतनी शीघ्रता हो भी तो नहीं सकती। अँगरेज़ी के प्राचीन ग्रन्थ Shepherd's Calendar में भी इसी प्रकार की कल्पना है ; पर उसमें न तो वह आधुनिकता है, और न दुःखी जीवन के प्रति सहानुभूति। कथा की शिथिलता को उकसाने के लिये स्थल-स्थल पर समयोचित घटनाएँ रक्खी गई हैं, जैसे शरद् काल में विवाह, पिता-पुत्र का कलह अथवा वसंत के अंत में बूढ़े पिता बोरीना की करुणा-जनक मृत्यु। जाड़े में यागना और अंतेक की प्रेम-पूर्ण खोज अथवा ग्रीष्म में यागना के ऊपर भीड़ का आक्रमण—ये दो स्थल बड़े मर्मस्पर्शी है। बीच-बीच में देहाती कहावतों और कथानकों का साहित्यिक आनंद तो मिलता ही है, वहाँ के रीति-रस्मों का भी घनिष्ठ परिचय दिया है। गाँवों की गंदगी के साथ-साथ वहाँ की संध्या एवं उषा की छटा मिलती है, और दीन दरिद्रों के सरल तथा संतोषमय जीवन के संपर्क से सच्चे सुख का दिग्दर्शन हो जाता

है। अन्य देश के पाठकों को एक-आध स्थल खलेंगे अवश्य; पर सार्वभौमिक भावनाएँ कथा को अतीव मर्मभेदी बना देती है। परिश्रमशील और धर्मभीरु कूबा की मृत्यु का दृश्य बड़ा ही कारुणिक है। वर्षों की दुर्घटनाओं और दुःख-पूर्ण झंझटों के अनंतर जब उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं, तो वहाँ का वेदना-पूर्ण वर्णन आँखो में आँसू ला देता है—

" And higher yet it flew, and higher,
yet higher, higher,
Yea, till it set its feet,
Where man can hear no longer the voice
of lamentation, nor the mournful discords
of all things that breathe—
Where only fragrant lilies exhale balmy
odours, where fields of flowers in bloom
waft honey-sweet scents athwart the air ;
Where starry rivers roll over beds of a million
hues ; where night comes never at all." *

देखिए, स्वर्गीय शांति का कैसा वर्णन है। रेमांट की काव्य-कला में ही नहीं, उनके व्यक्तिगत जीवन में भी बड़ी सरलता है। उनकी स्त्री भी साहित्यिक रुचि की हैं, और कई भाषाएँ जानती हैं। उनसे रेमांट को बहुत सहायता मिलती है। दोनों जनों ने अपने स्वदेश (पोलैंड) के लिये साहित्य में ही नहीं, सामाजिक सेवा तथा सुधार में भी बहुत कार्य किया है। इनकी इस कृति में किसानों के जीवन का औदार्य-पूर्ण चित्रण, साहित्यिक सहानुभूति की दृष्टि से, एक विशेष स्थान रखता है। भारतीय

---

* *The Peasants* : *Autumn* (Alfred A. Knopf, New York, 1924).

किसानों के दुःख-पूर्ण जीवन पर ऐसे ही महत्व-पूर्ण ग्रंथों की आवश्यकता है। यदि हमारे साहित्य ने इन ग़रीबों की इतनी भी सहायता न की और दारिद्र्य में छिपे हुए इनके सच्चे हृदय का रहस्य न खोला, तो भला वह स्वदेश का और क्या उपकार कर सकता है? इस विषय में रेमांट भारतीय कवियों तथा लेखकों के पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं।

जार्ज बर्नर्ड शॉ

ध्यान देने की बात है कि आज तक जिन तीन, अथवा टैगोर को लेकर चार, कवियों को ब्रिटिश-साम्राज्य में नोबेल-पुरस्कार मिला है, उनमें से कोई भी इँगलैंड का पक्का निवासी नहीं कहा जा सकता। किपूलिंग का जन्म बंबई में हुआ था, उनकी माँ हिंदुस्तानी थीं और वह बहुत दिनों तक भारतवर्ष में रहे; यीट्स तथा बर्नर्ड शॉ, दोनों ही आयर्लैंड के रहने वाले हैं। १९२५ का पुरस्कार जब शॉ को दिया गया तो आपने पुरस्कार-समिति को लिखा कि मेरे ही पास जितना रुपया है, उसी का ठीक उपयोग मैं नहीं कर सकता; और लेकर क्या करूँगा? फिर बहुत कहने-सुनने पर आपने उसे स्वीकार भी किया, तो इस शर्त पर कि समिति उसे लौटाकर इँगलैंड तथा स्वीडन के साहित्यिक संबंध को दृढ़ एवं सुसंगठित करने में व्यय करे। नियमानुसार रुपया लौटाया नहीं जा सकता था, अतएव शॉ ने स्वयं इसे उसी लक्ष्य के लिये व्यय करना स्वीकार कर लिया।

इस बात से लोगों को यह अनुमान होगा कि शॉ बहुत धनी हैं। इस समय तो अवश्य इनके पास धन हो गया है, पर जीवन के प्रारंभ में इन्हें बहुत कष्ट सहन करना पड़ा था। इनका जन्म डब्लिन में, जुलाई, १८५६ ई० में, हुआ। इनका घराना प्राचीन तथा प्रतिष्ठित अवश्य था, पर इनके पिता सरकारी पेंशन लेकर

गल्ले की दूकान करते थे। पिता के विषय में तो शॉ ने स्पष्ट रूप से बहुत कुछ लिखा है, माता का भी इन पर बहुत प्रभाव पड़ा। माता-पिता में पटती नहीं थी, और इसी से वह अपना अधिकांश समय संगीत में ही लगाती थीं। यही कारण था कि शॉ ने प्रारंभ से ही गाने-बजाने में अपना ध्यान लगाया, और आगे चलकर संगीत-समालोचक भी हो गये। इनके नाटकों में कहीं कहीं तो संगीत-शास्त्र के अनेक वैज्ञानिक विवरण दिये हुए है। प्रारंभिक शिक्षा इधर-उधर होती रही, पर लड़के का चित्त स्कूलों में न लगता था। वहाँ का काम यह अपने साथियों से करा लेते, और उनके विनोदार्थ बदले में उन्हें क़िस्से सुनाया करते। उन्होने स्वयं लिखा है कि "स्कूल में मैंने कुछ भी नहीं सीखा"। बस, कभी चित्रालय में जाकर चित्र देखा करते, और कभी संगीत की पुस्तकें पढ़ा करते। पिता की स्थिति ऐसी थी नहीं कि उच्च शिक्षा इन्हे दे सकते। अतएव १५ वर्ष की ही अवस्था में इन्होने एक ठेकेदार की दूकान में नौकरी कर ली। यहाँ रहकर आपने कुछ ईसाई पादरियो के विरुद्ध पत्रों में लेख लिखे, और ५ वर्ष नौकरी करके फिर लंदन चले गये। तंगी के कारण इनकी माता ने लंदन में गाने का एक स्कूल खोल दिया था, और वहीं अपनी लड़कियों के साथ रहती थीं। उनके पहुँचने के पूर्व ही इनकी एक बहन का देहांत हो गया था। इधर शॉ की कोई दूसरी नौकरी भी न लगी, तो माँ को और भी कष्ट होने लगा। एक-आध महीने टेलीफोन कंपनी में भी नौकर रहे ; पर वहाँ इनका जी न लगा, और तभी से इधर-उधर पत्रों में लिखकर थोड़ा-बहुत कमा लिया करते थे। पहले संगीत पर समालोचनाएँ लिखीं, फिर एक नाटक प्रारंभ किया, जो पूरा भी नहीं हो पाया। इसी समय के अनुभवों में आपने लिखा है कि एक दवा का

विज्ञापन लिखने के लिये मुझे पाँच पौंड मिले थे। अभी तक यही इनकी सबसे बड़ी साहित्यिक कमाई थी। इस बीच में रुपयों की इन्हें बड़ी कमी रही, यहाँ तक कि कई साल तक आपने नये कपड़े ही नहीं बनवाये। बीच-बीच में संपादकों को अपने लेख भेज-भेज कर तंग करते रहे; क्योंकि एक भी लेख इन लोगों ने स्वीकार न किया। इससे निराश न होकर आपने उपन्यास लिखने की ठान ली; पर इन्हें कोई प्रकाशित ही करने को तैयार न था। बात यह थी कि इनकी भाषा बड़ी कड़वी और तीखी रहती थी, जिसे लोग पसंद न करते थे।

इन सभी अप्रकाशित ग्रंथों को यह सुरक्षित एक कोने में रखते गये और शीघ्र ही इनकी माँग हुई। साम्यवाद के दिन आये, और पत्रों में तीव्र लेखनी वाले लेखकों के लिये स्थान मिलने लगा। इस प्रकार के वायु-मंडल में शॉ ख़ूब घूम चुके थे, और साम्यवाद पर इनका अच्छा अध्ययन भी हो चला था। अतएव पत्रों में दो-एक उपन्यास इनके प्रकाशित हुए, जिनकी प्रशंसा विलियम मॉरिस-जैसे कवि ने की। इसी समय के इनके दो उपन्यास The Irrational Knot (मूर्खता की गाँठ) और Love Among the Artists (कलावंतों का प्रेम) एक पत्र में छपे, जिसकी संपादिका उस समय श्रीमती एनी बिसेंट थीं। इन्होंने शॉ की आर्थिक सहायता भी बहुत की, जिसके लिये वह अभी तक इनके कृतज्ञ हैं। मिसेज़ वैरन्स प्रोफेशन (Mrs. Warren's Profession)-नामक नाटक, जिसे इनके एक मित्र ने प्रकाशित किया था, बहुत पसंद किया गया, और इनकी अन्य पुस्तकों के लिये प्रसिद्ध लेखक स्टिवेंसन तक ने उत्सुकता प्रकट की। धीरे-धीरे वह समय बीत गया, जब इन्हें प्रकाशकों का द्वार खटखटाना पड़ता था। इस चिंता से मुक्त हो कर अब वह देश-सेवा का उपाय

सोचने लगे, और यह निश्चित कर लिया कि साम्यवाद द्वारा ही यह कार्य हो सकता है। इसी बीच में प्रसिद्ध फ़ेबियन सोसायटी (Fabian Society) की नींव पड़ गई थी । इनके मित्र सिडनी वेब ने इसके लिये बड़ा प्रयत्न किया, और शॉ को भी इसमें सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया। यह उनके साथ हो लिए, और दोनों जनों के परिश्रम से इस संस्था का आज बड़ा नाम हो गया है। इसके लिये प्रचारार्थ पैम्फ़लेट लिखना तथा वक्तृता देना शॉ के मुख्य कार्यों में से हो गया, और इसी अभ्यास ने इन्हे पूरा व्याख्यानदाता बना दिया । कभी-कभी तो इन्हें ठेलों पर खड़े होकर सड़कों पर चिल्ला-चिल्लाकर बोलना पड़ा है, और अभ्यास करने के लिये एकांत में जाकर प्रायः यों ही जोश के साथ बड़बड़ाते रहना भी इनकी दिनचर्या का भाग रहा है। तभी से इनके विचार तथा भाव साम्यवादमय हो गये हैं, और इसकी छाप इनके नाटकों पर भी स्पष्ट पड़ी है । इस संबंध में इनकी एक महत्त्व-पूर्ण पुस्तक भी है * ।

साम्यवाद के नाम से उन दिनों इँगलैंड के लोग बहुत घबराते थे। इसीलिये शॉ को कोई विद्रोही, कोई आदर्शवादी और कोई सनकी कहता था। यह बात इनके कुछ और असाधारण विचारों के कारण भी थी। आप यद्यपि प्युरिटन पद्धति के धार्मिक हैं, तथापि ईसाई धर्म के अनेक अंशों का विरोध करते हैं । विवाह के भी प्रतिकूल है, और मांस भी नहीं खाते। एक बार आप लंदन में निरामिषता (Vegetarianism) के ऊपर व्याख्यान देने खडे हुए । पहले ही वाक्य में आपने कहा—" I am a vegetarian, because I believe vegetarianism makes a man fierce " इतना सुनकर सब लोग दंग हो गये और सभी

---

* The Illusions of Socialism.

आश्चर्य से इन्हें देखने लगे। तब तक आपने दूसरे वाक्य में तुरंत कह दिया—" If you doubt this, look at me. " और यह कह कर झट आँखें चढ़ाकर तेवर बदल दिये, और लगे सब को घूर-घूर कर ताकने। सारी जनता चकित हो गई ; क्योंकि इनका व्याख्यान पूरा एक अभिनय ही था।

शॉ ने देखा कि साम्यवाद से ही काम न चलेगा ; क्योंकि पैसे की तंगी से यह कष्ट में थे। इधर प्रतिष्ठित समालोचक विलियम आर्चर से इनकी मैत्री हो गई थी। वह उस समय एक प्रसिद्ध पत्र के नाट्य-समालोचक थे, और शॉ की सब प्रकार से सहायता करना चाहते थे। शॉ ने चित्रों की आलोचना प्रारंभ की और थोड़े दिन बाद जान-बूझकर आर्चर ने अपना पद त्याग कर इनकी नियुक्ति, चित्र-समालोचक के स्थान में, करा दी। इस पद पर यह कई वर्ष रहे, और चित्र-कला-संबंधी आधुनिक विचारों का विरोध करके इस क्षेत्र में यथार्थता (realism) का प्रचार करने का प्रयत्न करते रहे, यद्यपि राजनीति में इनका नाम आदर्शवादी (idealist) होने के कारण बदनाम था। सभी का विचार था कि इतने शक्तिशाली लेखक के लिये इस पद का वेतन बहुत कम है, अतएव यह शीघ्र ही 'स्टार'-नामक पत्र के संगीत-समालोचक होकर चले गये। संगीत का अध्ययन इन्होंने परिश्रम-पूर्वक किया ही था वहाँ भी इनकी मौलिक प्रतिभा झलक उठी। इनकी तीव्र आलोचना के मारे लोगों का नाक में दम हो गया, और कई बार तो इन पर मान-हानि का अभियोग चलते-चलते रह गया। परन्तु अपनी विद्वत्ता पर इन्हे विश्वास था, इसी से यह निर्भीक थे, और अपने व्यंग्य-पूर्ण हास्य द्वारा सबको चिढ़ाते ही रहे। जब लोग इनका लोहा मान गये, तो थोड़े ही दिन पीछे यह Saturday Review-पत्र के नाट्य-समालोचक

हो गये। इस बीच में इन्होंने दो कला-संबंधी अच्छी पुस्तकें भी लिख डाली थीं। एक तो थी इनके कला-संबंधी विचारों की एक प्रकार की सारावली, जिसका नाम था "Sanity of Art", और दूसरी नाटकों पर थी, जिसमें आपने नारवे के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन के आदर्श विचारों का सारांश दे दिया है, और उन्हीं के नाम पर इसका नाम भी रक्खा है "Quintessence of Ibsenism।" शॉ का मत है कि इब्सन शेक्सपियर से भी बढ़कर हैं, और संसार के विचारों को परिष्कृत तथा परिपक्क करने में जितनी सहायता इन्होंने की है, उतनी शेक्सपियर ने नहीं। आपका यह भी कहना है कि अँगरेज़ों ने अपने इस सर्व-श्रेष्ठ कवि को आवश्यकता से अधिक आदर देकर संसार के अन्यान्य कवियों का गौरव कम कर दिया है। शॉ अपने बाल्य-काल में ही शेक्सपियर के सारे नाटकों का अध्ययन समाप्त कर चुके थे, और यह इनको बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं; परन्तु इब्सन के विषय में जो कुछ अपनी वास्तविक सम्मति है, उसे स्पष्ट कहने में यह अँगरेज़ी-जाति के अकारण क्रोध से कदापि नहीं डरते।

समालोचना के इन तीनों क्षेत्रों में पूर्ण अनुभव प्राप्त करके अब शॉ ने केवल नाटकों के लिखने में ही समय बिताने का निश्चय कर लिया। इनके अब तक के लिखे हुए नाटक प्रचलित भी हो रहे थे, और इन्हें धीरे-धीरे विश्वास हो रहा था कि अब पुस्तकों से ही पर्याप्त आय हो जायगी। समालोचना के काम से कुछ समय बचाकर इन्होंने इसी बीच में "Widowers' Houses" (रँडुओं के घर)-नामक एक साम्यवाद-पूरित नाटक का कुछ अंश लिखा था। १८९२ में इसे संपूर्ण करके प्रकाशित कराया, तो इनके विरोधी लोग घबरा उठे, और पुस्तक की ख़ूब

आलोचना हुई। इसका अभिनय भी किया गया, पर बहुतों को पसंद नहीं आया। इससे चिढ़कर आपने "Philanderer"—नामक एक दूसरा सामाजिक नाटक लिखा, जिसमें स्त्रियों के स्वातंत्र्य पर कटाक्ष किया गया है, और समाज को जली-कटी सुनाई गई है। इसे विशेषतः अभिनय के लिये लिखा था, पर पहले नाटक की मेहमानी से घबराकर कंपनी ने डर के मारे इसे खेला ही नहीं। शॉ के दिल की कसक नहीं मिटी, और तुरन्त आपने Mrs. Warren's Professions-शीर्षक वेश्या-समाज-संबंधी एक दूसरा नाटक उसी कंपनी को दिया। इसमें आपने वेश्याओं के कुत्सित जीवन को वर्तमान सामाजिक प्रणाली का आवश्यक परिणाम बतलाया, और इँगलैंड के आंतरिक जीवन की ख़ूब पोल खोली। फिर क्या था, सरकार ने इसका अभिनय रोक दिया, और अमेरिका में इसके खेलने पर अभिनेताओं पर अभियोग चलाया गया। ये तीनों नाटक "Plays Unpleasant" के नाम से एकत्र संगृहीत हैं।

इतनी छेड़-छाड़ के बाद अब इन्होंने कुछ दूसरे ढंग से नाटक लिखने का विचार किया। "The Arms and the Man" लिखकर युद्ध के आधुनिक आदर्शों का ख़ूब आलोचनात्मक खंडन किया। इसमें कहीं-कहीं योरप की अर्द्धमाध्यमिक तथा अर्वाचीन सभ्यताओं का संघर्ष भी दिखाया गया है। The Man of Destiny में नेपोलियन के राजनीतिक सिद्धांतों तथा चरित्र-संबंधी त्रुटियों की आलोचना है। "You Never Can Tell" में आजकल की अप-टु-डेट औरतों का उपहास है जो थोड़ा-बहुत "The Arms and the Man" में भी पाया जाता है। इन सभी नाटकों में शॉ स्पष्टवादी के रूप में कटाक्ष करते हैं, और साधारण बातों को भी इस ढंग से व्यक्त करते हैं कि दिल

में वे घर कर लेती हैं। इन सभी ग्रन्थों का संग्रह फिर " Plays Pleasant and Unpleasant "-नाम से प्रकाशित हुआ (१८९८)।

समाज की काफ़ी ख़बर ले ही चुके थे, एक नाटक Caesar and Cleopatra-नामक उस प्राचीन ऐतिहासिक विषय पर लिखा, जिसे शेक्सपियर ने भी अपने एक ग्रन्थ में स्थान दिया है। पर दोनो लेखकों में बड़ा भेद है—शॉ में ऐतिहासिक सत्य अधिक है, और शैली नवीन है; शेक्सपियर में अपना नमक-मिर्च बहुत है। १८९९ में टालस्टाय के ढंग का " शैतान का चेला " (The Devil's Disciple)-नामक एक सामाजिक प्रहसन लिखा, और चार वर्ष बाद एक दूसरा नाटक प्रकाशित किया, जिसे बहुत लोग इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहते हैं। इसका नाम है—" Man and Superman ", अर्थात् " मनुष्य तथा दैवी पुरुष ", और इसमें समाज के कई प्रश्नों पर बड़ी मौलिक दृष्टि से विचार किया गया है। विवाह-प्रणाली, परमेश्वर में विश्वास, स्वर्ग का अस्तित्व तथा साम्यवाद का प्रभाव आदि-आदि कई समस्याओं पर स्पष्ट सम्मतियाँ नाटक के रूप में रक्खी गई हैं, जिनके कारण शॉ का स्थान संसार के मौलिक विचारकों में बहुत ऊँचा हो गया है। नाटक का वह स्थल अतीव प्रभाव-जनक है, जहाँ मरे हुए पिता-पुत्री मिलते हैं, और स्वर्ग एवं नरक का विवरण देते हुए अपनी पूर्व जीवन-घटनाओं की स्मृतियों पर आश्चर्य करते और पाठकों को भी आश्चर्य में डाल देते हैं।

" John Bull's Other Island " में इँगलैंड तथा आयर्लैंड के संबंध की कटाक्ष-पूर्ण आलोचना है, जिसके कारण उन दिनों के राजनीतिज्ञों में विशेष गवेषणा चल पड़ी थी। उन दिनों सप्तम एडवर्ड जीवित थे, इसकी प्रशंसा सुनकर उन्होंने अपने लिये इस

नाटक का एक अलग अभिनय कराया । हम भारतीयों के लिये यह ग्रंथ विशेषतः शिक्षाप्रद है ; क्योंकि इँगलैंड का चंगुल आयर्लैंड तथा भारतवर्ष, दोनों पर बराबर शक्ति से चढ़ा हुआ है। जिस प्रकार Widowers' Houses में निर्धनों के प्रति किये गये पूँजीपतियों के घोर अत्याचारों का दिग्दर्शन है, वैसे ही Major Barbara (१९०५)-नाटक में दरिद्रता का नग्न चित्र है, और उसकी दार्शनिक विवेचना करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि जनता के दरिद्र होने के ही कारण समाज में अत्याचारों और पापों की वृद्धि होती है। अभी तक शाॅ के विचारों से साम्यवाद का साम्राज्य हटा नहीं था, और Doctor's Dilemma (१९०६) में आपने बीसवीं शताब्दी के चलते-पुर्जे डाक्टरों की मिट्टी पलीद की है। Getting Married में इन्होंने फिर से अपने पुराने विषय, विवाह-संबंध, पर कटाक्ष किये, और १९०८ में "ब्लैंको पॉस्नेट"-नाटक में ईसाइयत पर तीव्र आलोचना की जिसका फल यह हुआ कि इसके अभिनय की मनाही कर दी गई । तथापि टाल्स्टॉय आदि बड़े-बड़े विचारकों ने इसे बहुत पसंद किया । अगले वर्ष फिर सरकार को तंग करने के लिये आपने समकालीन राजनीतिज्ञों तथा विद्वानों की भद्द "Press Cuttings"-नाटक में उड़ाई ; क्योंकि प्रकाशन-संबंधी रोक-टोक के निश्चय करने के लिये पार्लियामेंट ने एक कमेटी बैठाई थी, और उन दिनों शाॅ के नाटकों के कारण विशेष तहलका भी मचा था। यह नाटक भी रंगमंच में रोक दिया गया, यद्यपि शाॅ ने स्वयं इस कमेटी के सम्मुख गवाही दी, और अपने विचार बड़ी निर्भीकता से प्रकट किये।

"Androcles and the Lion" (१९१३) तथा Saint Joan of Arc (१९२१), दो और ऐतिहासिक नाटक इनके प्रकाशित हुए, जिनमें यत्र-तत्र सामाजिक व्यंग्य भी हैं। बीच में

(१६२१) Back to Methuselah नाटक लिखा, जिसमें छोटी-छोटी पाँच नाटिकाओं का एकीकरण सा है और आदम तथा हौवा के समय से लेकर सामाजिक विकास का काल्पनिक चित्र खींचा गया है, और मानव हृदय की प्रवृत्तियों के स्वाभाविक प्रस्फुटन के सिद्धांत बतलाये गये हैं। कुछ लोगों की सम्मति में इनके और सभी ग्रंथों का सारांश इसी में कूट-कूटकर भर दिया गया है। शॉ के नाटकों में सब से महत्त्व की बात उनकी भूमिकाएँ हैं, जो कभी-कभी तो मूल पुस्तक से पाँच-छः गुनी लंबी हो गई हैं। कारण यह है कि अपने नये सिद्धांतों तथा नाट्य-कलासंबंधी मंतव्यों को, बिना इन भूमिकाओं के यह जनता को स्पष्ट बतला भी नहीं सकते। इनके क्रांतिकारी विचार प्रत्येक क्षेत्र में वैसे ही हैं। धर्म की दृष्टि से तो प्यूरिटन (कट्टर) हैं, पर उपासना और भक्ति के बड़े पक्षपाती हैं। आडंबर के शत्रु तो हैं ही परंतु आपका कहना है कि मेरी सर्वप्रिय पुस्तक जॉन बनियन की Pilgrim's Progress है, जो प्रायः नवयुवकों को अच्छी नहीं लगती। पुस्तकों में तो कहीं-कहीं यह निरीश्वरवादी जान पड़ते हैं, पर आप गिरजाघरों में अकेले जाकर उपासना करते हैं, और कहते हैं कि गिरजे में भीड़ के साथ प्रार्थना करने से तो खलियान में परमात्मा की उपासना करना अच्छा है। जब यह लिखते-पढ़ते नहीं होते तो पैरगाड़ी या मोटर की मरम्मत करते, तैरते अथवा चित्र खींचते हैं, खाली कभी नहीं रहते। आप में हास्य-रस का बड़ा प्राबल्य है। एक बार एक सज्जन ने इनकी पुस्तकों से आय का हिसाब लगाकर पता लगाया कि इन्हें प्रति शब्द एक शिलिंग पुरस्कार मिला है ; बस, आपने एक शिलिंग इनके पास भेजकर प्रार्थना की कि मुझे कृपया एक शब्द भेज दीजिये। भला, बर्नर्ड शॉ हँसी में कब चूकने वाले थे, आपने तुरन्त उन्हें तार भेज दिया,

और उसमें एक शब्द भेजा—" Thanks ! "। देखिए, कैसा अच्छा मज़ाक रहा। उनका शिलिंग भी लौटा दिया, और एक ही शब्द भेजा भी।*

अध्याय ८

दो बड़ी लेखिकाएँ—डेलेड्डा तथा अनसेट

ग्रेजिया डेलेड्डा

आजतक नोबेल-पुरस्कार केवल चार महिलाओं को मिल चुका है। पहले-पहल प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कारक मैडम मेरी कुरी को मिला था, जिन्होंने अपने पति प्रोफ़ेसर पियरी कुरी के साथ-साथ रेडियम का पता लगाया था। प्रोफ़ेसर कुरी स्वयं तो फ्रांस के निवासी थे, पर उनकी पत्नी पोलैंड की थीं और इनका जन्म सन् १८६७ ई० में हुआ था। तदनंतर यह पुरस्कार स्वीडन की उपन्यास-लेखिका सेल्मा लेजरलॉफ़ को उनकी साहित्य-सेवा के लिये प्राप्त हुआ। अतएव श्रीमती डेलेड्डा साहित्यिक क्षेत्र की द्वितीय महिला है, जिन्हें यह पद १९२६ ई० में प्राप्त हुआ है।

---

* शॉ की अनेक जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं, पर इनमें सर्वश्रेष्ठ निम्न-लिखित लेखकों की लिखी हुई हैं—

१. G. K. Chesterton (London, 1910).
२. J Webb (Berlin, 1910).
३. H. C Duffin (London, 1920).
४. Edward Shanks (London, 1924).
५. Archibald Henderson (London).

इनकी पुस्तकों की प्रकाशक है Constable Co., London.

डेलेड्डा आजकल इटली की सर्वश्रेष्ठ स्त्री-लेखिका हैं और मसोलिनी ने इन्हें भी अपने साहित्य-परिषद् Italian Academy of Immortals में स्थान दिया है। ये रहनेवाली तो हैं इटली के सार्डीनिया-द्वीप की और वहीं इनका जन्म सन् १८७५ ई० में एक छोटे-से गाँव में हुआ था। विवाह होने के पूर्व ये अपने जन्मस्थान में ही रहीं और वहीं प्रकृति-निरीक्षण का पाठ पढ़ती रहीं। स्वजातीय कृषकों तथा गड़रियों के साथ रहकर द्वीप का मनोहर सौंदर्य अनुभव करके इन्होंने अपने अनेक गल्पों एवं कथानकों का मसाला वहीं से लिया और आज तक इनकी पुस्तकों में इनके उस प्रारंभिक जीवन की छाप मिलती है। इनके जीवन की सबसे बड़ी बात यह है कि रवींद्रनाथ की भाँति इन्होंने भी किसी विश्वविद्यालय अथवा कालेज की डिगरी नहीं प्राप्त की। रवि बाबू तो कालेज तक गये भी, पर इनकी सारी पढ़ाई तो गाँव की एक प्रारंभिक पाठशाला में ही समाप्त हो गई। इसे चाहे सार्डीनिया के सामाजिक कुसंस्कारों का फल कहें, चाहे उनकी पारिवारिक स्थिति का, पर रवींद्रनाथ की भाँति इनकी भी शिक्षा-दीक्षा प्रायः अपने ही अध्यवसाय से घर पर ही हुई। सार्डिनिया और इटली की भाषा एक ही न होने से उन्हें इटलियन लिखने-पढ़ने में अधिक परिश्रम भी करना पड़ा। गृहस्थी के जीवन में ये अपने बच्चों के साथ-साथ इटलियन पढ़ती रहीं; क्योंकि इनका विवाह मैंटुवा-निवासी एक सज्जन से हुआ और तभी से रोम के पोर्टो मारिज़ियो (Porto Maurizio) स्थान में ये रहती हैं। १७ वर्ष की ही अवस्था में इन्होंने 'Fior di Sardegna' (सार्डीनिया का फूल) नामक उपन्यास प्रकाशित कराया, जो इनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना थी। १८९६ ई० में दूसरा ग्रंथ Anime Oneste (साधु आत्मा) और १९०० में

Il Vecchio della Montagna (बूढ़ा पहाड़ी) निकला। तदनंतर इनकी लेखनी में वेग आ गया और १९०३ में 'Elias Portalu' नामक ग्रंथ लिखने के बाद ही दूसरे साल दो उपन्यास प्रकाशित किये। परंतु इन ग्रंथों में वर्णन बड़ा ढीला, चरित्र-चित्रण असंगठित तथा शैली भी शिथिल थी। पढ़ने से यह अवश्य जान पड़ता था कि लेखिका में मौलिकता है और उसकी लेखनी में शक्ति, पर अनुभव न होने के कारण इनका उपयोग नहीं हो सका था। दूसरी बात यह थी कि इन पुस्तकों में सार्डीनिया का वास्तविक चित्र भी नहीं था, जिसे वहाँ के लोगों ने पसंद किया होता। क्योंकि इस द्वीप के निवासी बड़े कट्टर और पुराने ढर्रे के हैं। उन्हें तो पहले यही नहीं पसंद था कि स्त्रियाँ लेखिका बनें, इसी से डेलेड्डा के माता-पिता इनके पढ़ते-लिखते रहने से बहुत असंतुष्ट रहते थे। उनका विचार था कि इसके कारण कोई नवयुवक इनसे विवाह न करेगा, क्योंकि गृहिणी-जीवन तथा साहित्यिक होने में परस्पर विरोध रहता है। इस विषय पर बहुत विवाद भी चला—कोई कहता था कि प्रत्येक वस्तु अथवा घटना का वास्तविक रूप वर्णन करना ही कला है, कोई डेलाक्रोयस (Delacroix) की भाँति कहता कि नहीं, "Art is exaggeration in the right place." अर्थात् कला यथास्थान अतिशयोक्ति ही का नाम है।

जो कुछ रहा हो, पर इनके इस समय के नायक-नायिकाओं के चरित्रों में गंभीरता नहीं थी, उनमें आध्यात्मिक शक्ति का विकास भी नहीं था। वे केवल समुद्र की तरंगों का अट्टहास देखकर मुग्ध हो जानेवाले जीव थे, जिनमें ज्ञानदृष्टि के अभाव के कारण अदृष्ट का भय अधिक था, विषाद की पीड़ा थी और साहस एवं उत्साह, दोनों की कमी थी। वे फुर्तीले और चंचल

अवश्य थे, पर कृत्रिम सुख अथवा माधुर्य के कारण उनके आंतरिक जीवन में सच्चा सुख न था। शीघ्र ही दूसरा उपन्यास Igıvochı della Vita (जीवन क्रीड़ा) नाम से प्रकाशित हुआ और दो वर्ष बाद (१९०८) La vıa deı male (पाप की राह) निकला। तभी से लेकर लगभग बारह वर्ष तक बराबर इनके उपन्यासो का ताँता बँधा रहा और निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं— Sıno al Confine अर्थात् सीमा-पर्यंत (१९१०), Nel Deserto (रेगिस्तान, १९११), Colombe e Spervıerı अर्थात् कबूतर और चील (१९१२), Chıaro-scuro अर्थात् गोधूली (१९१२), Canne al Vento (१९१३), Le Colpe Altruı (१९१४), Marıana Sırca (१९१५), Le Incendıo nel l' Olıveto अर्थात् पानी में आग (१९१८), Il Retorno del Fıglio अर्थात् पुत्रका प्रत्यावर्तन (१९१९), परंतु इनकी सर्वोत्तम पुस्तक अगले साल प्रकाशित हुई और लोगों का विचार है कि इसी के कारण इन्हें पुरस्कार भी दिया गया है। इस उपन्यास का नाम है La Madre (माता) और इसकी कथा भी बड़ी करुणापूर्ण तथा शिक्षात्मक है। इससे डेलेड्डा का रमणी-हृदय-विषयक मर्मस्पर्शी ज्ञान टपकता है और इसमें मातृप्रेम की भी पराकाष्ठा है। एक धार्मिक प्रवृत्ति की माता, जो अपने पुत्र को बहुत प्यार करती है, उससे पादरी बनने का अनुरोध करती है। उसके जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य यही है और इसी के लिये वह अपने प्राणप्रिय बेटे को भली भाँति तैयार करती है। अंत में लड़का धर्मगुरु बन जाता है, परंतु नवयुवक हृदय में धर्म के ऊपर प्रेम को विजय प्राप्त होता है और वह जोशीला पादरी अपनी प्रेयसी के आग्रह से माता के आदेश को तिलांजलि दे देता है। उधर बेटे का विवाह हो जाता है और दूसरी ओर माता के दुःख की गाथा प्रारंभ

होती है। जिस गिरजाघर में बेटा अपने पादरीपन से छुटकारा लेने जाता है, वहीं माता अपने प्राण छोड़ देती है। देखिए, जीवन के लक्ष्य का कितना ऊँचा आदर्श है, जो सर्वथा पुरस्कार के लिये आवश्यक है। इस पुस्तक का अँगरेज़ी में अनुवाद भी The Mother नाम से हो गया है और सर्वत्र इसका बहुत आदर है। इटली के प्रसिद्ध नाट्यकार पिरंडेलो ने इसके विषय में अपनी सम्मति देते हुए कहा है कि इटली के आधुनिक साहित्य में यह सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है।

इनका दूसरा ग्रंथ इसके बाद १९२१ में Il Segreto del l' Homo Solitario अर्थात् 'मित्रहीन का रहस्य' नाम से छपा। इनके पहले के लिखे हुए उपन्यासों की भाँति अब इन ग्रंथों में केवल वाह्य सौंदर्य तथा आडंबर ही न था, उनमें जीवन की वेदना थी और प्रणय-पूर्ण कामना की रहस्यमय छवि। Il Dio Dei Vivent अर्थात् जीवित का देवता (१९२२) में डेलेड्डा के धार्मिक गांभीर्य का परिचय मिलता है, जिससे पता चलता है कि जीवन में इनके लिये अब केवल प्रेम अथवा व्यथा-मात्र ही न था, कोई और गूढ़ तथा केंद्रीभूत पदार्थ था। 'जीवित का देवता' कौन है? ईसाई-धर्म के एक महात्मा ने कहा है कि "हमारे देवता मृतकों के देवता नहीं, जीवितो के देवता हैं"। इसी रहस्य का उद्घाटन तथा विवेचन डेलेड्डा ने किया है और स्पष्टतया समझाया है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो एक आदेश देनेवाली शक्ति होती है, जिसके शासन से सारे जीवन की लीला नियंत्रित एवं संगठित होती रहती है, वही विवेचना-शक्ति यह देवता है। डेलेड्डा बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति की थीं और दूसरे सार्डीनिया-निवासी भी, जिनके जीवन का इन्होंने वर्णन किया है, बड़े धर्म-परायण होते हैं। दूसरे वर्ष (१९२३) Il Flauto nel Bosco अर्थात् 'जंगल

में मंगल' प्रकाशित हुआ और इसके एक वर्ष पश्चात् La Danza della Collana अर्थात् 'कंठहार का नृत्य' (१९२४), नामक दूसरा अपूर्व ग्रंथ निकला। इन दोनों में ही लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि के साथ-साथ उनका वह आशापूर्ण मनोभाव मिलता है, जो प्रकृति का अनुकरण-मात्र है। इनकी आशावादिता दार्शनिक नहीं, स्वाभाविक है; मानव-जीवन इनके लिये प्रकृति के बाहर नहीं, उसके अंतर्गत उसका एक भाग मात्र है। जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में सन्निहित शक्ति से प्रकृति भिन्न-भिन्न ऋतुओं में अपने आह्लाद का प्रदर्शन करती है, उसी भाँति मनुष्य के भीतर भी नवीन सृष्टि की शक्ति अंतर्हित है और आवश्यकतानुसार इसका प्रादुर्भाव होता रहता है। यही संक्षेप में इनके आनंदवाद का मूल-सूत्र है।

पुरस्कार मिलने के थोड़े ही दिन पहले इनके दो और उपन्यास La Fuga in Egitto अर्थात् 'मिस्र देश को पलायन' (१९२५) और Il Sigillo de Amore अर्थात् 'प्रणय के चिह्न' (१९२६) प्रकाशित हुए। इन दोनों में भी उसी प्रवृत्ति का विकास हुआ है, परंतु साथ ही एक नये विचार का अंकुर भी दृष्टि-गोचर होने लगता है, जो धार्मिकता के साथ-साथ सदा ही रहता है। वह यह है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य के आंतरिक देवता की शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसमें पाप-पुण्य के संग्राम का संघर्ष भी कम होता जाता है। इनके पात्रों में संग्राम की यह शक्ति बहुत मिलती है। वे पाप से युद्ध ठानकर इंद्रियों को दमन करने की चेष्टा करते हैं और यदि दुर्भाग्यवश हार भी जाते हैं, तो हताश नहीं होते और न उनका आत्मविश्वास ही कम होता है। यही विशेषता डेलेड्डा के सभी अच्छे पात्रों में पाई जाती है। दो-तीन वर्ष हुए इनकी एक बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक Annalena Bilsini नाम

से निकली है, जिसकी नायिका अन्नालेना बिलसिनी बहुत शक्तिशाली तथा सजीव महिला है। पाप-पुराय के इस संघर्ष का अतीव उत्तम उदाहरण इस नायिका के चरित्र-चित्रण में मिलता है और इसमें संदेह नहीं कि इसकी सृष्टि में डेलेड्डा की प्रतिभा अपनी मौलिकता की सर्वोच्च श्रेणी पर पहुँच गई है। हमारा तो विचार है कि यदि यह पुस्तक इन्हें पुरस्कार मिलने के पूर्व प्रकाशित हुई होती, तो इस गौरव में इसका पूरा हाथ रहता और निर्णायक लोग इसका अवश्य ही उल्लेख करते।

डेलेड्डा का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखमय है। वह अधिकांश अपने बच्चों के साथ ही रहती और प्रायः पढ़ने-लिखने में ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। घर के बाहर लोग इन्हें बहुत कम देख पाते हैं, क्योंकि इनका कहना है कि संसार एक उपवन है, जो दूर से देखने पर बहुत रमणीय प्रतीत होता है, पर सन्निकट से देखने पर उसका बहुत कुछ सौंदर्य लुप्त-प्राय हो जाता है। अतएव वह इसे दूर से ही देखना पसंद करती हैं। पर इसका कदापि यह तात्पर्य नहीं कि वह मिलनसार अथवा सौजन्यपूर्ण नहीं हैं। इसके प्रतिकूल वह अपने अतिथियों का बड़ा आदर-सत्कार करती हैं। हाँ, उनके जीवन में आडंबरहीन सरलता का प्राबल्य अलबत्ता है, जो प्रत्येक विद्वान् के लिये आवश्यक है।

डेलेड्डा की वर्णन-शैली ही नहीं, इनके ग्रंथों में चित्रित मनोभावों का विकास भी बडे स्वाभाविक ढंग का है। अपने देश-निवासियों की दीनता तथा मानव हृदय का नैराश्य वर्णन करने में वह सिद्धहस्त तो हैं ही, दुःख तथा विषाद के चित्रण के समय उनके शब्दों में एक विचित्र धर्मभाव का संचार हो उठता है, जो इनकी सहृदयता का द्योतक है। इनकी एक छोटी कहानी में एक ऐसा स्थल आया है, जहाँ दो बुड्ढों के सम्मुख प्रत्यक्ष ईसा-

मसीह की मूर्ति आ खड़ी होती है, और इस घटना का सजीव वर्णन करके इन्होंने ऐसा मनोमोहक चित्र खड़ा कर दिया है कि सर्वसम्मति से इनकी छोटी कहानियों में यही सर्वश्रेष्ठ मानी जायगी। दूसरी बात यह है कि यह नीति तथा कला में एक अद्भुत सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करती हैं, पर यह नहीं कि यह उन लोगों में हों, जो कला की दुहाई देकर नग्न जीवन का चित्र खींचते हैं, जैसा आजकल हिंदी-साहित्य में हो रहा है। बल्कि यह तो उन लोगों की विरोधी हैं, जो केवल लोक-शिक्षा को ही कला का उद्देश्य मानते है। जीवन के दुर्गुणो का भी इन्होंने वर्णन किया है और मनुष्य की दुर्बलताओं का भी चित्र खींचा है; पर उस प्रकार नहीं, जैसे आजकल के घासलेटी साहित्य में हो रहा है। प्रसिद्ध जर्मन-कवि गुइटी ने कहा है कि "Art does not consist in what a man says, but how he says it." अर्थात् कला का महत्व कही हुई बात पर नहीं, उसको कहने की शैली पर निर्भर होता है। इसी दृष्टि से यह कला को एक धार्मिक कर्तव्य समझती हैं, जैसा कि एक स्थान पर इन्होंने स्वयं कहा है—" Sento l' arte come dovere अर्थात् आर्ट को मैं कर्तव्य ही जानती हूँ। अतएव इनके लिये लेखनी उठाना किसी धर्मानुष्ठान का प्रारंभ करना है। यदि इसी भाव से हमारे साहित्य-सेवी भी मातृभाषा की सेवा करने में तत्पर रहें, तो क्या हिंदी का स्थान संसार की भाषाओं में ऊँचा न हो जाय ?

हेनरी बर्गसन

पाठकों को स्मरण ही होगा कि सर्वप्रथम नोबेल-पुरस्कार फ़्रान्स के प्रसिद्ध कवि सली प्रुदोम को मिला था और तीन वर्ष

पश्चात् सन १९०४ ई० में ही दूसरे फ्रान्सीसी कवि मिस्त्रल को। इस बीच में कई वर्ष बाद रोमे रोलाँ को मिला और तब से फ्रान्स के किसी विद्वान् को यह सम्मान नहीं प्राप्त हुआ था। जर्मनी के चार विद्वानों को पुरस्कार मिल चुका था और अब की बारी फ्रान्स ही को थी। ऐसा ही हुआ और सन् १९२७ ई० का पुरस्कार यहाँ के वयोवृद्ध दार्शनिक बर्गसन को दिया गया। यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि साहित्यिक पुरस्कार कभी-कभी दर्शन-शास्त्र के धुरंधर पंडितो को भी दिया जाता है; क्योंकि पुरस्कार-समिति इसके लिये दर्शन को भी साहित्य के ही अन्तर्गत मानती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जहाँ तक होता है, ऐसा कम ही किया जाता है; क्योंकि अभी तक ३० वर्षों के भीतर बर्गसन को लेकर कुल केवल तीन दार्शनिकों को ही यह पुरस्कार मिला है, जिनमें से दो तो मॉमसन तथा यूकेन जर्मनी के निवासी हैं। मॉमसन की दार्शनिकता विशेषतः ऐतिहासिक क्षेत्र की है और इनका सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है 'इतिहास की एकता' (Unity of History), जिसके दृष्टिकोण से संसार-भर के विकास में ऐतिहासिक तत्व का इन्होंने विवेचन किया है। यूकेन का दर्शन प्रायः धार्मिक है और इन्होंने ईसाई धर्म तथा आदर्श जीवन के रहस्यों पर लेखनी उठाई है। इस दृष्टि से यूकेन तथा बर्गसन में बहुत कुछ समानता भी है। बर्गसन ने सृष्टि के आंतरिक रहस्यों की विवेचना की है, तो यूकेन ने विकासपूर्ण आधुनिक जीवन को सुधारने का प्रयत्न किया है। आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व इन दोनों विद्वानों पर एक तुलनात्मक ग्रन्थ लिखा गया था जिसमें एक स्थान पर लेखक ने कहा है—"Eucken stands before us to-day as perhaps the greatest thinker of our age and the protagonist of a new idealism which satisfies our

demand for moral reality * * * His philosophy of life is an insistence upon the supremacy of the spiritual. His defence of freedom is a doctrine of spiritual liberty rooted in the saving initiative of God and our dependence on Him."*

इस सम्मति से मतभेद हो सकता है और यह सरलता से कहा जा सकता है कि वास्तविक दर्शन की दृष्टि से बर्गसन के ग्रन्थ कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं; क्योंकि यूकेन की दार्शनिकता प्रायः सामाजिक कल्याण तक ही संकुचित रह जाती है, पर बर्गसन ने जीवन तथा सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का अभूतपूर्व प्रतिपादन किया है। यह बात सत्य है कि शंकराचार्य अथवा कपिल-कणाद की भाँति इन्होंने किसी भिन्न विचार-पद्धति अथवा शाला का प्रवर्तन नहीं किया है, जिसमें उच्च कोटि की मौलिकता हो। पर विचार करने का इनका अपना ढंग ही निराला है और उसमें यह बड़ी निर्भीकता पूर्वक सफल भी हुए हैं।

इनका पूरा नाम है हेनरी लुई बर्गसन (Henri Louis Bergson)। इनका जन्म १८५९ ई० में हुआ था और यद्यपि इनके पिता अँगरेज़ तथा माता यहूदिन थीं, तथापि यह निरंतर फ्रान्स में ही रहे और फ्रेंच भाषा में ही लिखते भी रहे हैं। छात्रावस्था में यह पढ़ने-लिखने में बहुत मन लगाते और अपनी कक्षा में प्रायः सर्वश्रेष्ठ रहते थे। प्रारंभ से ही साहित्य एवं दर्शन, दोनों में ही इनकी रुचि थी और इसी से बहुत दिन तक कुछ निश्चित न कर सके कि किस क्षेत्र में जीवन बितायें। अंत में दर्शन

* Eucken and Bergson: Their Significance for Christian Thought by E. Hermann (The Pilgrim Press, Boston, 1912) page 87.

की ही ओर झुके और तब से फ्रान्स के कई कालेजों में दर्शन शास्त्र के यह अध्यापक भी रहे। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ L' Evolution Creatrice सन् १९०७ में प्रकाशित हुआ था * जिसमें इन्होंने विश्व के विकास के सिद्धान्तों पर सराहनीय प्रकाश डाला है। थोड़े ही दिन पश्चात् इन्होंने हास्यरस और उसके सच्चे महत्व पर एक दूसरा ग्रन्थ लिखा, जिसका अनुवाद† सन् १९१३ में प्रकाशित हुआ।

१९१४ ई० में जब योरप की लड़ाई छिड़ी, तो इन्होंने अध्यापन कार्य छोड़ दिया और तभी से अन्तर-राष्ट्रीय सहानुभूति एवं संधि के लिए निरंतर परिश्रम कर रहे हैं। इस दृष्टि से, संभव है, इन्हें दूसरा पुरस्कार Nobel Peace Prize भी शीघ्र ही दिया जाय, जो संसार में शान्ति स्थापित करने के लिये सबसे अधिक कार्य करने वाले व्यक्ति को मिलता है। तभी से इनका महत्व और भी बढ़ गया और उनके ऊपर कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, जिनमें एक तो‡ लड़ाई के ही दिनों में प्रकाशित हुआ था।

युद्ध समाप्त होते ही फ्रेञ्च एकेडमी (Academie Francaise) ने इन्हे अपना सदस्य बना लिया, जो फ्रान्स में सर्वोच्च गौरव समझा जाता है। तदनंतर जब अंतर-राष्ट्रीय संघ (League of Nations) ने भिन्न-भिन्न देशों के विचार विनिमय के लिये एक

---

* Creative Evolution, Translated from the French, (1914).

†Laughter : an Essay on the meaning of the Comic, translated by C. Brereton & F. Rothwell, (1913).

‡ A Study in the Philosophy of Bergson by G.W. Cunningham (1916.)

International Committee of Intellectual Co-operation नाम की संस्था स्थापित की तो आप उसके सभापति निर्वाचित हुए। तभी से संसार में शांति को स्थायी बनाने की ही चिंता में प्रवृत्त रहते हैं और यही इनके जीवन का ध्येय हो गया है।

रही इनके दार्शनिक विचारो की बात, उनमें सबसे मुख्य सिद्धांत है विश्व में परिवर्त्तन की व्यापकता। इनका कहना है कि जीवन में प्रत्येक क्षण में परिवर्त्तन-ही-परिवर्त्तन व्याप्त है, जिसके कारण भूत, भविष्य तथा वर्तमान में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता—भूत परिवर्तित होकर वर्त्तमान में लीन हो जाता है और आगे बढ़कर भविष्य बन जाता है। या यों कहिए कि तीनों ही केवल वर्त्तमान के रूप में रह जाते हैं। इस विषय पर एक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ भी लिखा गया है * यद्यपि इनकी अन्यान्य पुस्तकें भी अंगरेज़ी में अनूदित हो गई हैं, जिनकी संक्षिप्त सूची नीचे दी जाती है †।

सिग्रिड अनसेट

सन् १९२८ का पुरस्कार भी कुछ आश्चर्य का कारण रहा; क्योंकि किसी को आशा न थी कि जब दो ही वर्ष पूर्व यह एक

---

* The Philosophy of Change by W. Carr.

† विशेष अध्ययन के लिए ये पुस्तकें देखिए—1. Mind Energy . Lectures and Essays by W. Carr. 2. Introduction to Metaphysics (1913). 3. Matierect Memoire (1914). 4. Time and Free Will—an essay on the immediate date of consciousness, translation, by F. W. Pagson. 5. A Study of Bergson's Attack on Intellectualism by Kartin Stephen, (1922).

महिला लेखिका को मिल चुका है, तो इतने शीघ्र फिर दूसरी महिला विदुषी को दिया जायगा। पर सच पूछें तो सिग्रिड अनसेट के ग्रन्थों की ख्याति ग्रेजिया डेलेड्डा के उपन्यासों से कुछ कम न थी। और हर्ष की बात तो यह है कि सेल्मा लेजरलॉफ की भाँति यह भी उसी देश की रहने वाली हैं, जहाँ के पुरस्कार दाता डाक्टर नोबेल स्वयं थे। अंतर केवल यही है कि सेल्मा अविवाहिता हैं और अपने स्वदेश तथा गाँव से अतिशय प्रेम रखती हैं, पर अनसेट गृहस्थ जीवन की उपासिका हैं और अपने बच्चो के स्नेह को संसार-व्यापी सुयश से भी अधिक श्रद्धा की दृष्टि से देखती हैं। इसका सब से स्पष्ट प्रमाण यह है कि जब पुरस्कार की घोषणा की गई, तो अनेक समाचार पत्रों के प्रतिनिधि इनके पास पहुँचे, पर उन्होंने सबको धता बताया; क्योंकि यह अपने बच्चो को सुलाने जारहीं थीं, और सब से यही साफ-साफ कह दिया—

"Don't ask me any questions. I have just received a cable that I have been awarded the Nobel Prize, but I have no time for philosophic chatter. I am going to put my children to bed. Naturally I am glad of the honour bestowed on me, but nothing compares with the happiness I feel among my children in my home."

अर्थात् मुझे दार्शनिक गपशप करने का समय नहीं है और पुरस्कार से मुझे उतना सुख भी नहीं जितना घर में अपने बच्चों के साथ रहने में है।

इन शब्दों से स्पष्टवादिता के अतिरिक्त माता के हृदय की सच्ची ममता एवं स्त्री जाति की स्वाभाविक सरलता टपकती है।

ठीक इसी आशय के शब्द उस समय रवि बाबू के मुँह से भी निकले थे, जब उन्हें पुरस्कार मिलने का समाचार दिया गया था। उन्होंने कहा था—"They have taken away my refuge." अर्थात् लोगों ने मेरी शान्ति छीन ली। वास्तव में बड़े हो जाने का यही दंड मिलता है कि संसार बड़े लोगों को तंग करने लगता है। अनसेट की इस शांति-प्रियता का एक मुख्य कारण यह है कि उनका जीवन प्रायः देहात में बीता है और आधुनिक नगरों के रहन-सहन से ये बहुत घबराती हैं। इनके पिता पुरातत्व विभाग के एक अच्छे कर्मचारी थे और इनका जन्म डेनमार्क में स्वदेश के बाहर हो हुआ। इनका जन्म काल सन् १८८२ ई० है और इस हिसाब से पुरस्कार के समय इनकी अवस्था सेल्मा लेजरलॉफ से भी कम ही रही है। यह गौरव इंग्लैंड के प्रसिद्ध लेखक किपलिंग को ४२ वर्ष की आयु में और सेल्मा को ५१ वर्ष में प्राप्त हुआ; पर अनसेट इस समय भी अपने ४६ वें वर्ष में हैं।

घर की दशा अच्छी न होने के कारण १० वर्ष तक (१८६६—१६०६) यह एक दफ्तर में क्लर्क रहीं, जिससे इन्हें शहरों के अर्वाचीन जीवन का साक्षात् अनुभव प्राप्त हुआ। इस अनुभव का आपने अपने उपन्यासों में समुचित प्रयोग भी किया है। वर्णन करने में यह बहुत ही सिद्धहस्त हैं और चाहे प्रकृति के दृश्यों का चित्र हो अथवा मानव-हृदय के विभिन्न भावों का, इनकी लेखनी की विस्तार-शक्ति का परिचय सर्वत्र एक-सा मिलता है। चित्रण कला का प्रादुर्भाव इनमें नैसर्गिक जान पड़ता है और इनकी जीवनी से पता भी लगता है कि पहले पहल इनकी इच्छा चित्रकारी ही करने की थी। पर छोटी अवस्था में ही पिता की मृत्यु हो जाने से घर का सारा भार इन्हीं पर आ पड़ा, जिससे

इन्हें उच्च शिक्षा न मिल सकी। नौकरी करके दफ्तर के काम से अवकाश मिलने पर ही यह कुछ लिखा करतीं, पर धीरे-धीरे इनका नाम होने लगा। इनका पहिला ग्रन्थ १९०७ में प्रकाशित हुआ, जब इनकी अवस्था २५ वर्ष की थी। पाँच वर्ष बाद इनका एक उपन्यास 'जेनी' (Jenny) नाम से प्रकाशित हुआ, जिससे इनकी गणना उच्च कोटि के लेखकों में होने लगी। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में से बहुतों का अँगरेजी में अनुवाद हो गया है, जिनमें एक तो दो मोटी-मोटी पोथियों में है। इसका नाम है "The Mistress of Hasaby" और इसमें प्रणय-लीला का विशद वर्णन है, विशेषतः महिला स्वभाव का चित्रण तो इसमें देखते ही बनता है। इसका दूसरा भाग है 'माला' (The Garland), जिसमें कल्पना का प्रचुर साम्राज्य है। इसी बीच में इनका प्रसिद्ध उपन्यास "क्रिस्तिन" छपा और इसके पाँच वर्ष बाद (१९२५) दूसरा ग्रंथ "कुल्हाड़ी" नाम से अनूदित होकर प्रकाशित हुआ। इसका नाम मूल में Olav Andunsson था। "The Snake Pit" नामक इनका एक ग्रन्थ अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। पर इन सभी पुस्तकों में हास्यरस कहीं छू तक नहीं गया है, जो अनसेट की प्रतिभा का साधन स्वरूप समझा जाता है। यह गुण अथवा अवगुण कुछ लोगों की सम्मति में इनकी माता के पक्ष से इन्हें स्वभावतः प्राप्त हुआ है; क्योंकि इनकी माता स्काटलैंड के एक प्राचीन वंश की थीं और स्काच लोग प्रायः रूखे कहे जाते हैं।

इनका सबसे बड़ा उपन्यास है "Kristin Lavransdatter" जो आज से दस-ग्यारह वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था और जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद तीन भागों में छपा है। इस कथा में भी एक व्यक्तित्व-संपन्न स्त्री का चित्र है जिसका नाम है क्रिस्तिन। प्रेम के

साथ-साथ शक्ति, आकांक्षा—इन्हीं दो प्रतिद्वंद्वी भावों का विकास कथा में मिलता है। अपने पति के प्रेम को तिलांजलि देकर, पत्नी, वैभव तथा सामाजिक श्रेष्ठता के पीछे दौड़ती है—इसलिए अपने पुत्रों की घृणा का भी पात्र बनती है—और अंत में कुछ भी हाथ नहीं आता, वही दशा होती है—

"दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम।"

जब क्रिस्तिन को कहीं भी सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता, तो वह अन्त में धर्म की शरण लेती है और सन्यासिनी बन जाती है। यह सारी कथा आजकल की नहीं, तीन-चार सौ वर्ष पूर्व की है जब योरप-भर में धर्म के ऊपर पार्थिव शक्ति का अत्याचार बड़े प्रचंड रूप मे हो रहा था। इसके लिए अनसेट को उन दिनों की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियो का विशेष रूप से अध्ययन करना पड़ा था, जिसका ही फल शायद यह हुआ कि यह उन्हीं दिनों रोमन कैथलिक धर्म की अनुयायिनी हो गई।

प्रसिद्ध समालोचक ह्यू वालपोल ने अनसेट की बहुत प्रशंसा की है। उनका कहना है कि यह गद्य लेखिका वास्तव में कवि है और इसकी नायिका क्रिस्तिन संसार की सर्वश्रेष्ठ नायिकाओं की श्रेणी में सदा अमर रहेगी। माध्यमिक काल के अनेक चित्रों की बात तो जाने दीजिए, इस कथानक में वह सनातन सत्य है जो इसे सदैव पाठको का प्रीतिभाजन बनाने में समर्थ रहेगा। यह सत्य उस संघर्ष में निहित है जो आदिकाल से मनुष्य तथा प्रकृति, परमात्मा एवं मनुष्य और मनुष्य एवं मानुषिक भावनाओं में चला आ रहा है।

इसी प्रकार के इनके और कई ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनमें मध्य-कालीन योरप के जीवन की झलक है और जिसके वर्णन करने में इन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। आजकल योरप-भर

प्रतियाँ बिक गई हैं। इसका फल यह हुआ है कि अनसेट अब बहुत धनाढ्य हो गई हैं और अपने गांव में इन्होंने एक बढ़िया प्रासाद बनवा लिया है, जो योरप के मध्यकालीन युग के महलों के नमूने का है। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि उस समय के जीवन तथा रंग-ढंग से उन्हें अगाढ़ प्रेम हो गया है और कल्पना की सहायता से यह प्रायः उसी समय की परिस्थिति में अपना जीवन भी व्यतीत करती हैं। क्योंकि वैसे भी इनके विचारों पर आधुनिक सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा जान पड़ता। स्त्रियों की स्वतन्त्रता अथवा दंपतियों के समानाधिकार में इनका विश्वास नहीं है—यह ऐसे भावों की घोर विरोधिनी हैं। एक स्थान पर इन्होंने निर्भीकता पूर्वक कहा है—"Women are in no need of equality. Personally I find domestic work enchanting. Most authoresses in Norway have a domestic leaning and love to cook a good dinner. A woman who fails to see the beauty of a butcher's wares is not quite as she should be. I have never loved work outside my home * * * * * * I would rather have polished my father's boots than have had to obey orders from a man whom I do not know."

कितने स्पष्ट शब्द हैं और कितने मौलिक विचार हैं। ठीक इसी भाव के विचार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने थोड़े दिन पूर्व अमरीका में प्रकट किये थे और यही एक अंगरेज़ी कवि ने भी कहा है—

> "Nothing lovelier can be found for woman
> Than to study household good."

पर आजकल के समाज सुधारकों तथा राजनीतिप्रिय महिलाओं को स्त्री-पुरुषों की समानता में ही संसार का कल्याण दीख पड़ता है, यद्यपि भारतीय नीतिकारों का कहना है कि "स्त्री स्वातंत्र्यं नार्हति।" अनसेट ने अपने इस सिद्धान्त के लिए युक्ति-संगत कारण भी दिये हैं और वह कहती हैं—

"All words about comradeship lead to nothing. It deprives the man of his feeling of obligation and responsibility towards the family, and leads him away from his natural position as a bread-winner and protector of his children."

बात बहुत पते की है और सचमुच जब मर्दों और औरतों की बराबरी का यह प्रश्न और जटिल हो जायगा, तो गृहस्थी के सुख में भी बाधा पड़ने लगेगी और पारस्परिक कृतज्ञता एवं सहायता की मात्रा नगण्य हो जायगी। सच पूछिए, तो अनसेट के इन विचारों में बड़ी दूरदर्शिता है, और एक विदुषी महिला के मौलिक विचार होने के कारण ये हमारे मनन तथा अनुशीलन के योग्य हैं।

नारवे के ही उपन्यासकार नुत हैमूसन के भी नोबेल-पुरस्कार प्राप्त ग्रन्थ का नाम वही है, जो अनसेट के इस उपन्यास का और दोनों की भाषा, उनका लक्ष्य तथा वायुमण्डल बहुत कुछ एक से हैं। नारवे में आजकल इस प्रकार के कथानकों का बहुत प्रचार है और ये दोनों ही वहाँ के अमर लेखकों में उच्च स्थान के अधिकारी होंगे। अनसेट तो अपने गाँव से इतना प्रेम करती हैं कि शायद ही कभी बाहर निकलती हों। प्रातःकाल लिखती हैं, फिर घर का कारबार देखती और अपने बच्चों की देख-रेख करती

और शाम को प्रायः बगीचे में घूमती हैं। इन्हें रंग-बिरंग के फूलों का बहुत शौक़ है और गाँव में एक छोटा सा बच्चों का थियेटर भी इन्हीं के प्रोत्साहन से चलता है, जिसके लिए यह स्वयं नाटक भी लिखती हैं। रात को फिर यह बहुत देर तक लिखने-पढ़ने ही में व्यस्त रहती है। इनका जीवन अतीव सरल तथा खान-पान भी बहुत सादा है और शिक्षित महिलाओं के लिए सचमुच इनका रहन-सहन आदर्श-स्वरूप है। *

अध्याय ६

अमेरिकन औपन्यासिक सिंकलेर लूई

अभी तक साहित्य का नोबेल पुरस्कार किसी भी अमेरिकन लेखक को नहीं मिला था। यों तो विज्ञान आदि में यहाँ के कई विद्वानों को यह आदर प्राप्त हो चुका था पर लोगों की यह धारणा थी कि साहित्य के क्षेत्र में अमेरिकन लोगों ने प्रायः इँगलैंड के कवियों तथा गद्य लेखकों का अनुकरण करने के अतिरिक्त और अधिक कुछ भी नहीं किया है। यह बात बहुत अंशों तक ठीक भी थी यद्यपि हमें यह कहने में भी आज संकोच नहीं है कि अँग्रेज़ी के समालोचक तथा साहित्यिक इतिहास लेखक इस विषय में कट्टर ही नहीं पक्षपात से शून्य भी नहीं हैं। इस पक्षपात का फलस्वरूप

* अनसेट के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए देखिए Sigrid Undset: A Nordic Moralist by Victor Vinde (University of Washington Book Store), (1930) Sigrid Undset by J. Bing, (1924).

ही यह खेद के साथ लिखना पड़ता है कि अन्य देशीय अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध लेखकों के भी नाम अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहास में नहीं मिलते। आप बड़ी से बड़ी अंग्रेज़ी की पुस्तक उठालें, उसमें न रवींद्रनाथ ठाकुर का नाम मिलेगा और न सरोजिनी नायडू का। इसी प्रकार अमेरिका के भी पुराने और नये लेखकों को पक्के अँग्रेज़ आलोचकों ने उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। वाल्ट ह्विटमैन को छोड़कर किसी भी अमेरिकन साहित्यिक को इन्होंने गौरव अथवा ध्यानपूर्वक अध्ययन का पात्र नहीं समझा है। और धुरंधर कवि तथा दार्शनिक एमर्सन, लाँगफेलो एव भी इस कट्टरता के अपवाद नहीं रह सके हैं। अंग्रेज़ जाति की साहित्यिक पक्षपात-पूर्णता का यह एक प्रबल प्रमाण है।

परन्तु इसके लिए अमेरिकन ही नहीं अन्य देशीय अंग्रेज़ी के विद्वान भी दोष के भागी हैं क्योंकि वे लोग प्रायः अंग्रेज़ी भाव-भंगी को ही अपनी कविताओं तथा पुस्तकों में अधिक स्थान देने की चेष्टा करते रहे हैं। यह सर्वथा जातीयता ही नहीं अन्तर्जातीयता का भी घातक है। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध आलोचक सर एडमंड गॉस ने वर्षों पूर्व सरोजिनी नायडू को इसी प्रकार का उपदेश उनकी अंग्रेज़ी कविता के संबंध में दिया था। नायडू ने युवावस्था की अपनी कविताएँ जब इन्हें दिखाईं तो वे कहने लगे कि हिन्दुस्तानी को अंग्रेज़ी फूलों अथवा चिड़ियों के वर्णन में सान्त्वना न मिलना चाहिए, उन्हें तो बुलबुल, कोयल अथवा गुलाब का ही आश्रय लेना उपयुक्त है। ठीक यही बात गत दो शताब्दियों के अमेरिकन कवियों तथा औपन्यासिकों के विषय में कही जा सकती है। क्योंकि यह लोग प्रायः इँगलैंड के जीवन तथा भावों का ही गीत गाते चले जा रहे थे। परन्तु इसके लिए पर्याप्त कारण भी था। बात यह थी कि अमेरिका में अंग्रेज़ी

साहित्य का इतिहास वास्तव में एक सौतीली बहिन या भाई के इतिहास के समान है।

इसी से बड़े से बड़ा अमेरिकन लेखक भी कभी कभी योरपियन अनुकरण का शिकार हो गया है। उदाहरणतः कहा जाता है कि हेनरी जेम्ज़ ने तरजीनीव, फ्लाबर्ट तथा जार्ज ईलियट से बहुत सी बातें उधार लीं और इसी प्रकार हावेल्ज़ ने टाल्स्टाय तथा जर्मन लेखक हायने से ही नहीं वरन् अंग्रेज़ी लेखिका जेन आष्टेन से भी अपने नमूने उड़ाये हैं। अमेरिकन लेखकों के विरुद्ध इस प्रकार की शिकायत बहुत कुछ ठीक है यद्यपि अंग्रेजी के योरपियन लेखकों ने स्वयम् इस प्रकार की बहुत सी बातें की हैं और महाकवि शेक्सपियर भी सर्वथा इस अभियोग से मुक्त नहीं ठहराये जा सकते। परन्तु कुछ दिनों से स्वयम् अमेरिकन लेखकों ने इस अपराध से पिंड छुड़ाने की ठानी और यद्यपि ये लोग बहुत पहिले से प्रयत्नशील थे पिछले महायुद्ध के समाप्त होते ही इनका यह प्रयत्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। कारण यह था कि महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् प्रत्येक देश में एक नवीन जाग्रति का उदय हो चला और अमेरिका इससे बच नहीं सकता था। यह अनुभव-सिद्ध है कि जब कभी संसारव्यापी युद्ध हुए हैं तो उनके समाप्त हो जाने पर सर्वत्र एक विशेष प्रकार की राष्ट्रीय जाग्रति उठ खड़ी होती है। इसी प्रकार की नवीन जाग्रति का फल यह हुआ कि अमेरिका के साहित्यिक क्षेत्र में भी एक आत्मज्ञान आगया और लेखकों को अपने देश के जीवित चित्र उपस्थित करने की रुचि हो चली।

इन लेखकों में प्रमुख हैं सिंकलेर लूई जिन्हें सन् १९२९ का पुरस्कार दो वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ है। लूई का जन्म ७ फरवरी, १८८५ ई० को अमेरिका के साकसेगाउर नामक स्थान में हुआ। २२ वर्ष

की अवस्था में ये एल विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट होकर एक पत्र के संवाददाता होगये। फिर कई पत्रिकाओं तथा प्रकाशकों के यहाँ संपादन का कार्य करते रहे। इसी समय से इन्होंने कहानियाँ लिखना प्रारंभ कर दिया और १९१४ में "हमारे मिस्टर रेन" Our Mr. Wrenn नामक एक उपन्यास प्रकाशित कराया जिस पर लोगों का कुछ विशेष ध्यान न गया।

एक वर्ष पश्चात् दूसरा उपन्यास The Trail of the Hawk निकला जो पहिले की भाँति लष्टम-पष्टम बिकता रहा। इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों कथानकों में प्रतिभा का आभास मिलता है और लूई की लेखनी की शक्ति लक्षित होती है। परन्तु वास्तव में इनकी ख्याति १९२० में हुई जब इनका कटाक्ष-पूर्ण उपन्यास Main Street प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में पश्चिमोत्तर अमेरिका के बड़े-बड़े नगरों के संकुचित जीवन का खाका उड़ाया गया है जो आधुनिक अमेरिका की सभ्यता का सबसे बड़ा दुर्गुण है। अब तक अमेरिकन पाठकों को उन तीसरे दर्जे के रद्दी उपन्यासों को पढ़ने की आदत पड़ गई थी जिनमें दैनिक जीवन के चित्रों का सर्वथा अभाव रहता था।

पर लूई के ग्रंथ पढ़ने से अमेरिकन पाठकों में जीवन की सच्ची घटनाओं और मानव चरित्र पर उसके प्रभाव के प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगा। उन्हें पहले पहल यह ज्ञात हुआ कि अब तक जो उपन्यास लिखे जाते थे वे पाठकों की विकृत रुचि की पूर्ति के लिए थे, वास्तविक साहित्य सेवा अथवा जीवन की समस्याओं के विवेचन के रूप में नहीं। मेन स्ट्रीट में यत्र तत्र दैनिक जीवन के चित्रों के चित्रण में अतिशयोक्ति की मात्रा अवश्य बढ़ गयी है पर इसमें कटुतापूर्ण सत्य की छाया है और अमेरिकन जीवन की क्षुद्रता का भीषण उपहास। एक अँग्रेज़ आलोचक ने इसके

संबंध में यों लिखा था—" It was a mirror held up not to their own nature, but to the nature very close to their own " और ठीक यही भावना प्रत्येक पाठक के हृदय में आती है। क्योंकि इसे पढ़ते समय यही जान पड़ता है कि इसमें मेरे पड़ोसी की हंसी उड़ाई गई है, मेरी नहीं। और इस प्रकार सारे देश में एक अद्भुत सामाजिक आन्दोलन की लहरी उठ खड़ी हुई और देश को ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे अब तक वह रिपवॉन विंकिल की तंद्रापूर्ण घाटी में सो रहा था और किसी ने उसे चिल्ला कर जगा दिया हो।

यों तो इनके दो और ग्रंथ The Job तथा Free Air में भी कुछ सामाजिक कटाक्ष थे पर जो जागृति Main Street से हुई उसकी तुलना दूसरे ग्रंथ के प्रभाव से नहीं की जा सकती। परंतु आगे चल कर जो उपन्यास Babbitt नाम से प्रकाशित हुआ उसकी सर्वप्रियता तो इतनी बढ़ गई कि आजकल अमेरिका भर में बैबिट शब्द एक विशेष अर्थ का द्योतक हो गया। मेन स्ट्रीट में अतिशयोक्तिपूर्ण कटाक्ष था पर बैबिट में हास्य का वह सुंदर छटा है जिसे पढ़ कर व्यावसायिक अमेरिका का आन्तरिक दृश्य अपनी नग्नता पूर्ण रूप से पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देता है। यदि पहले के पढ़ने से अपने पड़ोसियों के दुर्गुणों का स्मरण होता था तो इस ग्रंथ में प्रत्येक व्यापारी को स्वयं अपना ही चित्र अंकित मिलता है। साधारण अमेरिकन व्यापारी जो 'भला मानुस' कहलाने के फेर में पड़ कर न तो अपने व्यवसाय का ही ह्रास होने देना चाहता है और न चंचलता के आग्रह को ही रोक सकता है, अपने निरंकुश आचरण का शिकार बन जाता है। इस प्रकार अपनी आत्मा तथा वाह्य संसार के बीच में उसका आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास कुचल उठता है। यह सब चित्र

इस प्रकार हास्य-रस-पूर्ण ढंग से दिखाया गया है कि कहते ही बनता है।

वैबिट के पश्चात् "मार्टिन ऐरोस्मिथ" नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ (१९२४) जिसमें डाक्टरों की भद् उड़ाई गई है। जिस प्रकार महात्मा गाँधी के व्रत से डाक्टर लोग आश्चर्य में पड़ गये थे और कहने लगे थे कि डाक्टरी सिद्धांतों को इस उदाहरण से बहुत धक्का पहुँचा है, उसी प्रकार लूई ने भी आधुनिक चिकित्सा के नवीन वैज्ञानिक सिद्धांतों की असफलता की खिल्ली उड़ाई है। इसके पश्चात् Mantrap तथा Elmer Gantry (१९२७) नामक उपन्यास प्रकाशित हुए जिनमें से पहले में तो बहुत कुछ तथ्य न जान पड़ा और दूसरे से भी लोग निराश ही रहे। Elmer Gantry में तात्कालिक घटनाओं के फल स्वरूप गाली गलौज की कुछ ऐसी बातें आ गई हैं जिनका लूई की लेखनी से निकलना सर्वथा लोग कठिन समझते थे। पर बात शायद यह थी कि उस समय चर्च में कुछ ऐसे लोग घुस पड़े थे जिन्हें वहाँ रहना शोभा नहीं देता था और जो किसी प्रकार उसके योग्य नहीं थे। धार्मिक संस्थाओं ने उस समय के मद्य निषेध आन्दोलन में बड़े बड़े रंग बदले थे और राजनैतिक क्षेत्र में भी टाँग अड़ाने का स्वाँग रचा था। इसी बात को ध्यान में रख कर लूई ने Elmer Gantry का चित्र खींचा था। और इसी कारण कुछ दिनों तक इस संबंध में वाद विवाद भी चलता रहा। इस ग्रंथ का मूल्य इन्हीं कारणों से क्षणिक हो गया और इसमें कुछ कटुता भी आ गई।

इस विवाद-पूर्ण वातावरण से बचने के लिए ही शायद लूई ने दूसरे ही वर्ष The Man who knew Coolidge नामक उपन्यास प्रकाशित कराया जिसका ध्येय वैबिट की भाँति सामाजिक था।

परन्तु इसकी तथा बैबिट की शैली में बड़ा भेद था, क्योंकि इसमें चरित्र चित्रण की मात्रा बहुत कम है, केवल वार्तालाप द्वारा नायक के चित्र का परिचय कराया गया है। एक वर्ष पश्चात् डॉड्स्वर्थ नामक दूसरा उपन्यास छपा जो इनका आज तक का अंतिम ग्रंथ है, क्योंकि तब से इनकी और दूसरी पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई। यह ग्रंथ भी काफी बिका और दो ही वर्ष के भीतर इसके तीन संस्करण निकल गये। डॉड्स्वर्थ में एक अमेरिकन पूँजीपति और उसकी पत्नी के योरपीय पर्यटन का अनुभव चित्रित किया गया है। इसमें योरप तथा अमेरिका के सामाजिक रहन-सहन का तुलनात्मक वर्णन है और अमेरिकनों के मनोभावों का अच्छा विवरण मिलता है।

लोग कहा करते हैं कि लूई के ग्रंथों में चरित्र चित्रण का सर्वथा अभाव है और उनमें प्रायः व्यंग्यात्मक वर्णन ही मिलता है। यह व्यंग्य कभी कभी छिछोरापन से छलकने लगता है और लूई वास्तव में एच० जी० वेल्ज़ की भाँति प्रतिभा पूर्ण पैंफलेट लेखक के ही रूप में दर्शित होते हैं। ये शब्द वास्तव में अनुपयुक्त नहीं हैं पर हमें सदा स्मरण रहना चाहिये कि लूई पक्के अमेरिकन और अमेरिका के प्रजातंत्रात्मक शासन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनके ग्रंथों में अपने देश के दुर्गुणों की अवहेलना न करते हुए उनका विशद वर्णन है जो सच्चे स्वराज्य का द्योतक है। इसे यदि साहित्यिक दृष्टि से अच्छा न भी कहा जाय तो भी यह मानना पड़ेगा कि लूई में निरीक्षण शक्ति है और उससे भी बढ़ कर उपहास करने की क्षमता है। इन्हीं गुणों से वे अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं।

कुछ लोग शायद यह कहें कि लूई योरपियन अनुकरण से इसलिए बच सके कि वे प्रायः योरप और विशेषतः इंगलैण्ड में रहे हैं और अमेरिकन वातावरण से अधिकतः अलग ही रहते आये

। यह बात ठीक है पर लूई के अमेरिकन वर्णन में सहृदयता है गौर वे बाहरी लेखकों की भाँति अमेरिका को हेय नहीं समझते। ह अवश्य है कि वे पहले पहल १९ वर्ष की अवस्था में ही इंगलैण्ड गाये थे जब वे विश्वविद्यालय में पढ़ते थे और छुट्टियों में भ्रमण के त्तए निकले थे। उस समय इनके पास कुल मिलाकर दस रुपये से ी कम था और एक सप्ताह भी न रह कर ये सीधे घर लौट गये। ो वर्ष पीछे फिर इंगलैण्ड आये और तीन सप्ताह रह कर फिर चले ये। परन्तु इस बीच में ये १५ वर्ष तक इंगलैण्ड की यात्रा न कर सके। और १५ वर्षों के भीतर ही इनका "मेन स्ट्रीट" प्रकाशित हुआ रतएव कम से कम इस ग्रंथ पर तो इंगलैण्ड के पर्यटन का प्रभाव हीं पड़ा दिखाई देता। हाँ, जब १९२१ में ये इसके प्रकाशन के ाद यहाँ आये तो अलबत्ता कार्नवाल जाकर एक छोटे से होटल ं रहने लगे और यहीं "बैबिट" का लिखना भी प्रारंभ किया, द्यपि तीन महीने बाद होटल छोड़ कर केण्ट के एक छोटे से गाँव ं जाकर रहने लगे। बैबिट के प्रकाशित होने के पश्चात् से लूई ायः प्रति वर्ष इंगलैण्ड हो आते है, यहाँ तक कि दूसरे प्रसिद्ध पन्यास "एरोस्मिथ" का भी प्रारंभ लंदन में ही हुआ। जब जब े विलायत जाते हैं तो वहाँ के डेवन, केण्ट, कार्नवाल आदि प्रसिद्ध ान्तों में पैदल ही पैदल ख़ूब घूमते हैं। इस प्रकार इङ्गलैण्ड तथा स्काटलैण्ड के शायद ही कोई स्थान हों जहाँ ये दो एक बार न हो आये हों। अभी दो ही वर्ष पूर्व अपनी पत्नी के साथ ये गर्मी भर इङ्गलैण्ड में घूमते रहे थे और एक दिन अकस्मात् डरहम के उस छोटे से कस्बे में भी पहुँच गये जहाँ श्रीमती लूई के माता पिता पैदा हुए थे।

पिछली बार जब ये १९२८ में इङ्गलैण्ड से लौट कर घर गये तो अमेरिका के पर्वतीय प्रदेश में वरमाण्ट नामक स्थान पर

छोटी-मोटी ज़मींदारी ख़रीद कर वहीं रहने लगे। इसी स्थान पर "डाड्स्वर्थ" नामक उपन्यास समाप्त किया गया और यहीं लूई का रहने का विचार जान पड़ता है, क्योंकि तब से प्रायः ये गर्मी के दिन यहीं व्यतीत करते हैं और जाड़ों में कभी न्यूयार्क चले जाते, कभी योरप और कभी पूर्वीय देशों में भ्रमण करते हैं। आशा है कभी आप हमारे देश में भी पधारेंगे और भारतीय साहित्यिकों को भी अपने दर्शनों से कृतार्थ करेंगे।

आज तक लूई के कुल ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रत्येक में इङ्गलैण्ड का या तो उल्लेख है या पात्रों का वहाँ आना जाना होता है। पर इङ्गलैण्ड से इस प्रकार का घनिष्ठ संबन्ध केवल "डॉड्स्वर्थ" में ही मिलता है। क्योंकि इस उपन्यास के नायक मिष्टर डॉड्स्वर्थ तथा उनकी पत्नी को इङ्गलैण्ड में ही आकर अपने सुखमय विवाहित जीवन की पोल का पता लगता है। यहीं आकर उनकी आँखें खुलती हैं और यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि अमेरिकन लेखकों में से लूई का जितना विस्तृत ज्ञान इङ्गलैण्ड की सामाजिक स्थिति तथा अंग्रेज़ों के मनोभावों का है उतना और किसी को नहीं। तथापि इङ्गलैण्ड के संबन्ध में आज तक इन्होंने अपनी लेखनी कभी नहीं उठाई है—वहाँ का वर्णन इनके सभी ग्रंथों में गौण ही रहा है, मुख्य कभी नहीं होने पाया है। इसका स्पष्ट कारण यही है कि ये अपने देश तथा देशवासियों को ही सर्व प्रथम अपनी साहित्यिक सेवा द्वारा उत्तेजित तथा जाग्रत करना चाहते हैं। यह सर्वथा ठीक ही है। क्योंकि पहले घर में दीया जलाकर फिर मसजिद में जलाया जाता है।

थोड़े दिन हुए इनसे अपनी पत्नी से मनमुटाव हो गया और फल यह हुआ कि तिलाक़ तक की नौबत आ गयी। तिलाक़ के पश्चात् जब इन्हें नोबेल पुरस्कार मिला तो इनकी भूतपूर्व पत्नी

ने कचहरी में प्रार्थना पत्र दिया कि अब इनका सुयश बढ़ जाने से इनकी आय में भी वृद्धि हो गई है। अतएव मुझे अब इनसे और अधिक खानगी का खर्च दिलवाया जाय। शायद इस मामले में श्रीमती लूई की डिगरी भी हो गई है।

उपसंहार

साहित्य के लिए नोबेल-पुरस्कार का सन् १९२९ तक का यह विवरण इस प्रकार समाप्त होता है। प्रारंभ से आजतक यह कुल २७ बार दिया गया है, जिनमें सब मिलाकर २९ विद्वानों का आदर इसके द्वारा हुआ है; क्योंकि दो वर्ष १९१४ तथा १९१७ में, यह दो-दो लेखकों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया था और १९१४ तथा १९१८ में पुरस्कार किसी को दिया ही नहीं गया। इस प्रकार फ्रान्स को पाँच, जर्मनी को चार, नारवे को तीन बार, स्वीडन, इटली, पौलैंड, स्पेन और आयरलैंड को दो-दो बार तथा अमेरिका, भारतवर्ष, बेलजियम, डेनमार्क और स्वीजरलैंड को एक-एक बार यह गौरव प्राप्त हो चुका है। महिलाओं को तीन बार दिया गया है, पर विज्ञान का यही पुरस्कार केवल एक विदुषी स्त्री मैडम कुरी को ही दो बार मिला है, जिन्होंने अपने पति प्रोफ़ेसर कुरी के साथ-साथ रेडियम का पता लगाया था। यद्यपि डाक्टर नोबेल की पुरस्कार-संबंधी शर्तों में स्वदेश-विदेश, काले-गोरे अथवा स्त्री-पुरुष इत्यादि विभेदों के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं है, बल्कि यही स्पष्टतः लिखा है कि—

" I declare it to be my express desire that in the awarding of the prizes no consideration whatever be paid to the nationality of the candidates, that is to say, that the most deserving be awarded the prize * * * * "

तथापि इन विस्तृत विवरणों से पाठकों को संसार की साहित्यिक प्रगति का बहुत कुछ पता लगेगा।

साहित्य के नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखकों की क्रमानुगत सूची

१९०१—रेनी फ्रैंकोय अरमंद सली-प्रुदोम (फ्रांस) १८३९—१९०७

१९०२—थियोडोर मॉमसन (जर्मनी) १८१७—१९०३

१९०३—जार्न्स्टर्न जार्नसन (नारवे) १८३२—१९१०

१९०४—फ्रेडरिक मिस्त्रल (फ्रांस) १८३०—१९१४ तथा जोशे एकीगेरी (स्पेन) १८३३—१९१६

१९०५—हेनरिक सिंकीवीच (पोलैण्ड) १८४६—१९१६

१९०६—ज्योसु कारडूकी (इटली) १८३६—१९०७

१९०७—रडयार्ड किपलिंग (इंगलैण्ड) १८६५—

१९०८—रडल्फ़ यूकेन (जर्मनी) १८४६—१९२६

१९०९—सेल्मा लेजरलॉफ (स्वीडन) १८५८—

१९१०—पॉल हेसे (जर्मनी) १८३०—१९१४

१९११—मॉरिस मेटरलिंक (बेलजियम) १८६२—

१९१२—जेरर्त हातमाँ (जर्मनी) १८६२—

१९१३—श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर (भारतवर्ष) १८६१—

१९१४—किसी को पुरस्कार न दिया गया

१९१५—रोमे रोलाँ (फ्रांस) १८६६—

१९१६—वर्नर वॉन हीडनूस्टाम (स्वीडन) १८५९—

१९१७—हेनरिक पांटोपिदन (डेनमार्क) १८५७—तथा कार्ल जेलेरप (डेनमार्क) १८५—१९१९

१९१८—पुरस्कार नहीं दिया गया

साहित्य के नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखकों की क्रमानुगत सूची

१९१९—कार्ल स्पिटलर (स्वीजरलैण्ड) १८४५—१९२५
१९२०—नुत हैमसन (नारवे) १८६०—
१९२१—अनातोले फ्रांस (फ्रांस) १८४४—१९२४
१९२२—जैसिंतो बेनावंत (स्पेन) १८६६—
१९२३—विलियम बटलर यीट्स (आयरलैण्ड) १८६५—
१९२४—लेडिस्ला रेमांट (पोलैण्ड) १८६८—
१९२५—जार्ज बर्नर्ड शॉ (आयरलैण्ड) १८५६—
१९२६—ग्रेजिया डेलेड्डा (इटली) १८६७—
१९२७—हेनरी बर्गसन (फ्रांस) १८५९—
१९२८—सिग्रिड अनसेट (नार्वे) १८८२—
१९२९—सिंक्लेर लूई (अमेरिका) १८८५—

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.